वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 378
ISBN-978-93-82071-59-4

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

–संकलनकर्त्री–

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के
61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013
के अन्तर्गत पूज्य माताजी के 58वें आर्यिका दीक्षा दिवस अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	वैशाख कृ. दूज, 27 अप्रैल 2013	40/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

भगवान महावीर के शिष्य श्री गौतम स्वामी के मुखकमल से निःसृत जिनवाणी को अनेक पूर्वाचार्यों ने विशेष ज्ञान के क्षयोपशम के आधार पर क्रम–क्रम से लिपिबद्ध किया जिसको गतिमान रूप देते हुए वर्तमान में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनधर्म की अद्‌भुत प्रभावना की तथा जैन जगत पर महान उपकार किया है। गद्य लेखन के साथ–साथ पद्य साहित्य में पूजा–विधान के क्षेत्र में उन्होंने एक विशेष कीर्तिमान स्थापित करते हुए जो भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की है, कर्मशृंखला को काटने का जो अपूर्व माध्यम प्रदान किया है वह वर्णनातीत है।

उन्होंने जहाँ अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, गोम्मटसार, षट्‌खण्डागम जैसे महान ग्रन्थों का अनुवाद किया, अनेकों क्लिष्ट ग्रन्थों का लेखन किया वहीं युवा, आबाल–गोपाल, वृद्धादि को ध्यान में रखते हुए अत्यन्त सरल भाषा में अनेकानेक ग्रन्थों की रचना की है जिसके माध्यम से दिग्भ्रमित प्राणी सरल रूप में आगम ज्ञान प्राप्त कर देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति में अत्यन्त दृढ़ हो जाता है और अपने सम्यग्दर्शन को विशुद्ध करते हुए एक दिन महान पदवी की प्राप्ति में भी सक्षम हो जाता है।

सन् १९७२ में पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला द्वारा पूज्य माताजी द्वारा लिखित साहित्य को हम विपुल मात्रा में प्रकाशित करते रहे हैं जिससे इस ग्रंथमाला को एक विशेष स्थान जैन समाज में प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थमाला द्वारा सदैव कम मूल्य पर साहित्य उपलब्ध कराकर लोगों को ज्ञानामृत का पान कराने का हमारा विशेष उद्देश्य रहा है और आगे भी रहेगा। इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित अनेकानेक पुस्तकों की शृंखला में यह नूतन कृति भी आपके ज्ञानार्जन में निमित्तभूत बने और आप इसके द्वारा जिनागम में वर्णित आगमोक्त ज्ञान को सरल रूप में जानकर ज्ञानार्जन करते हुए देव–शास्त्र–गुरु की भक्ति करके अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करते हुए क्रमशः मुक्तिलक्ष्मी के वरण में भी सक्षम बनें तथा ऐसी महान कृतियों को प्रदान करने वाली पूज्य माताजी स्वस्थ एवं दीर्घायु रहकर हम सभी को इसी प्रकार ज्ञानामृत का पान कराती रहें यही वीरप्रभू से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

इस संसार में अनेक प्राणी जन्म लेते हैं और कालकवलित हो जाते हैं उनमें से कुछ भव्यात्मा प्राणी शुभोपयोग से शुद्धोपयोग में आकर अपनी आत्मा को मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर कर लेते हैं और उनमें भी कुछ विशेष भव्य प्राणी ऐसे होते हैं जो विशेष पुण्य कर दर्शनविशुद्ध्यादि भावनाओं को भाकर केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेते हैं और संसार में जगत्पूज्य हो जाते हैं जिन्हें हम अरिहन्त, जिन, तीर्थंकर, सर्वज्ञदेव आदि नामों से जानते हैं।

जो चार घातिया कर्मों का नाश कर चुके हैं, ४६ गुण सहित और १८ दोष रहित हैं ऐसे वे तीर्थंकर भगवान गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक के स्वामी होते हैं, इन पंचकल्याणकों को मनुष्य और विद्याधर आदि के अतिरिक्त देवगण विशेष पूजा भक्ति और अपरिमित वैभव के साथ मनाते हैं जिसका वर्णन सविस्तार अनेकानेक प्राचीन ग्रन्थों में है।

उनमें से तीर्थंकर भगवान के जन्मकल्याणक की जो अद्‌भुत महिमा है उसका सम्पूर्ण वर्णन परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा संकलित पुस्तक "तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा" में है जिसे जम्बूदीवपण्णत्ति, सिद्धान्तसार दीपक, हरिवंशपुराण और आदिपुराण ग्रन्थ के आधार से सविस्तार दिया गया है। वस्तुतः महान पुण्यशाली भव्यात्मा जीव ही इन पंचकल्याणकों में भाग लेकर अपनी कर्मशृंखला को काटकर मुक्तिवधू से परिणय कर पाते हैं।

वर्तमान साधु जगत में आज जैनशासन के शीर्षस्थ साधुओं में परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का नाम आता है जो इस कलिकाल में साक्षात् शारदास्वरूपा हैं और आज ७८ वर्ष की वय में भी आगम के परिप्रेक्ष्य में कमजोर शरीर होते हुए भी युवाओं सा जोश रखते हुए प्रतिक्षण जिनागम रूपी महासमुद्र में छिपे अनमोल रत्नरूपी विषयों को लाकर जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। पूर्वाचार्यों की वाणी पर अकाट्य श्रद्धा रखने वाली और आगम को अपना प्राण मानने वाली पूज्य माताजी की अनेक कृतियों में यह कृति भी स्वयं में अनूठी है और धर्मजिज्ञासुओं को एक नूतन विषय का आगमोक्त ज्ञान प्रदान कराने वाली है।

बन्धुओं! चूँकि भावना भवनाशिनी होती है अतएव इस कृति का स्वाध्याय कर हमें प्रतिक्षण यही भावना भानी चाहिए कि जिन जिनेन्द्र भगवान का जन्माभिषेक चारण ऋद्धिधारी मुनिगण अत्यन्त भक्तिभाव से देखते हैं और अपार उल्लास के साथ सौधर्म इन्द्रादि देवगण करके महान पुण्य का संचय करते हैं उस जन्माभिषेक को करने का सौभाग्य हमें भी प्राप्त हो और उन सबके माध्यम से इतना पुण्य संचित होवे कि एक दिन हम भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में सफल होवें। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरूपी रत्नों की प्रदात्री पूज्यनीया माताजी का ज्ञानमयी, वात्सल्यमयी वरदहस्त हम सब पर बना रहे और वे आगामी भवों में तीर्थंकर पदवी की प्राप्ति करें यही जिनेन्द्र भगवान से मंगल प्रार्थना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति—अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**—गोयल, **नाम**—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् १९५२, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम—क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग ३०० ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि—सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा ८ अप्रैल २०१२ को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा—भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर,

शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा—पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा—'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
1. जम्बूद्वीपपण्णत्ति से	5
2. सिद्धांतसार दीपक से (षष्ठोधिकारः)	27
3. आदिपुराण से (त्रयोदशं पर्व)	48
4. हरिवंश पुराण से (अष्टत्रिंशः सर्गः)	83
5. हरिवंश पुराण से (एकोनचत्वारिंशः सर्गः)	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् १९७२ में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई १९७४ में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी १९७५ में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् १९९० में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण — जुलाई सन् १९७४ में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (१०१ फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् १९७९ में एवं सन् १९८५ में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित १३६ सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा — हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त २०० कमरे, ५० से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त २ किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ? — भारत की राजधानी दिल्ली से ११० किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से ४० किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रोहतक, दिल्ली-६।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-१९, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
१३. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
१४. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
१५. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
१६. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
१७. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-४, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कॉनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
१९. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
२०. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
२१. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
२२. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

तीर्थंकर जन्माभिषेक वंदना

जै जै जिनेन्द्र आपने जब जन्म था लिया।
सम्पूर्ण लोक में महा आश्चर्य भर दिया।।

सुरगृह में कल्पवृक्ष पुष्पवृष्टि कर झुके।
देवों के सिंहासन भी आप आप कंप उठे।।१।।

शीतल सुगन्ध वायु मंद मंद बही थी।
पृथ्वी भी तो हिलने से मानो नाच रही थी।।

संपूर्ण दिशायें गगन भी स्वच्छ हुये थे।
सागर भी तो लहरा रहा आनंद हुये से।।२।।

व्यंतर गृहों में भेरियों के शब्द हो उठे।
भवनालयों में शंखनाद गूँजने लगे।।

ज्योतिष गृहों में सिंहनाद स्वयं हो उठा।
सुरकल्पवासि भवन में घंटा भी बज उठा।।३।।

इंद्रों के मुकुट अग्र भी स्वयमेव झुक गये।
जिन जन्म जान आसनों से सब उतर गये।।

तब इंद्र के आदेश से सुर पंक्ति चल पड़ी।
सबके हृदय में हर्ष की नदियाँ उमड़ पड़ीं।।४।।

सुरपति प्रभू को गोद में ले गज पे चढ़े हैं।
ईशान इंद्र प्रभु पे छत्र तान खड़े हैं।।

सानत्कुमार औ महेंद्र चमर ढोरते।
सब देव देवियाँ बहुत भक्ती विभोर थे।।५।।

क्षण में सुमेरु गिरि पे जाके प्रभु को बिठाया।
पांडुकशिला पे नाथ का अभिषेक रचाया।।

सौधर्म इंद्र ने हजार हाथ बनाये।
संपूर्ण स्वर्ण कलश एक साथ उठाये।।६।।

सबसे प्रभू का न्हवन एक साथ कर दिया।
जय जय ध्वनी से देवों ने आकाश भर दिया।।

सब इंद्र और इंद्राणियों ने न्हवन किया था।
सब देव और देवांगनाओं ने भी किया था।।७।।

अभिषेक जल उस क्षण में पयोसिंधु बना था।
देवों की सेना डूब रही हर्ष घना था।।

जन्माभिषेक जिनका स्वयं इंद्र कर रहे।
उत्सव विशेष और की फिर बात क्या कहें।।८।।

सुरपति ने पुनः प्रभू को लाके जनक को दिया।
बहु देव और देवियाँ सेवा में रख दिया।।
सुर धन्य वे जो नाथ संग खेल खेलते।
मिथ्यात्वशत्रु को भी वे घानी में पेलते।।९।।
मैं भी करूँ सेवा प्रभु की भक्ति भाव से।
मिथ्यात्व का निर्मूल हो समकित प्रभाव से।।
बस एक प्रार्थना पे नाथ! ध्यान दीजिये।
'सज्ज्ञानमती' पूर्ण हो यह दान दीजिये।।१०।।

सुदर्शनमेरु भक्ति

तीर्थंकर-स्नपननीर-पवित्रजातः
तुङ्गोऽस्ति यस्त्रिभुवने निखिलाद्रितोऽपि।
देवेन्द्र-दानव-नरेन्द्र-खगेन्द्रवंद्यः,
तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।१।।
यो भद्रसालवन-नंदन-सौमनस्यैः,
भातीह पांडुकवनेन च शाश्वतोऽपि।
चैत्यालयान् प्रतिवनं चतुरो विधत्ते,
तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।२।।
जन्माभिषेकविधये जिनबालकानाम्,
वंद्याः सदा यतिवरैरपि पांडुकाद्याः।
धत्ते विदिक्षु महनीयशिलाश्-चतसृः,
तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।३।।
योगीश्वराः प्रतिदिनं विहरन्ति यत्र,
शान्त्यैषिणः समरसैक-पिपासवश्च।
ते चारणर्द्धि-सफलं खलु कुर्वतेऽत्र,
तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।४।।
ये प्रीतितो गिरिवरं सततं नमन्ति,
वंदन्त एव च परोक्षमपीह भक्त्या।
ते प्राप्नुवंति किल 'ज्ञानमतिं' श्रियं हि,
तं श्रीसुदर्शनगिरि सततं नमामि।।५।।

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

(जंबूदीवपण्णत्ति से[१])

तुंगी चूलियसिहरो ण विलग्गइ उडुविमाणणामस्स।
तलभागे णायव्वा बालपमाणेण णिद्दिट्ठा।।१३६।।
उत्तरकुरुमणुयाणं कोमलसुकुमालणिद्धवण्णेण।
सिहरितलमज्झभागे केसेण दु अंतरं होइ।।१३७।।
पंडुकसिला वि णेया कणयमया विविहरयणसंछण्णा।
पुव्वुत्तरम्मि भागे इंदाउहसंणिहा होइ।।१३८।।
दक्खिणपुव्वदिसाए पंडुकवरकंबला सिला होइ।
कुंदिंदुसंखवण्णा अट्ठमिससिसंणिभा रम्मा।।१३९।।
दक्खिणपच्छिमभागे जासवणणिभा दु इंदधणुसरिसा।
णामेण रत्तकंबलमहासिला होइ णायव्वा।।१४०।।
उत्तरपच्छिमभागे सुरिंदधणुसंणिभा परमरम्मा।
रत्तसिला णायव्वा तवणिज्जणिभा समुद्दिट्ठा।।१४१।।

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

उन्नत चूलिकाशिखर बाल के प्रमाण से ऋतु नामक विमान के तलभाग से नहीं लगा है अर्थात् मेरुचूलिका के ऊपर बाल मात्र के अन्तर से ऋतु विमान निरालम्ब स्थित है, ऐसा निर्दिष्ट जानना चाहिए।।१३६।।

मेरु के शिखर और ऋतु विमानतल के मध्य भाग में उत्तरकुरु में उत्पन्न मनुष्यों के कोमल, सुकुमार एवं स्निग्ध वर्ण वाले एक बाल मात्र का अन्तर है।।१३७।।

सुमेरू पर पांडुकवन में पूर्वोत्तर भाग (ईशान) में इन्द्रायुध (इन्द्रधनुष) के सदृश और विविध रत्नों से व्याप्त सुवर्णमय पाण्डुकशिला जानना चाहिए।।१३८।।

दक्षिण-पूर्वदिशा (आग्नेय) में कुंदपुष्प, चन्द्रमा एवं शंख के समान वर्ण वाली अष्टमी के चन्द्र के सदृश रमणीय उत्तम पाण्डुकंबला नामक शिला है।।१३९।।

दक्षिण-पश्चिम भाग (नैऋत्य) में जपाकुसुम व इन्द्रधनुष के सदृश रक्तकंबला नामक महाशिला जाननी चाहिए।।१४०।।

उत्तर-पश्चिम (वायव्य) भाग में इन्द्रधनुष के सदृश, अतिशय रमणीय और तपनीय के समान प्रभा वाली रक्तशिला कही गई है।।१४१।।

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति-अधिकार-४ पृ. ७१ से ८६ तक।

पंचसया आयामा वित्थार तदद्ध होंति णिद्दिट्ठा।
चत्तारि जोयणाइं उत्तुंगाओ वरसिलाओ।।१४२।।
अइउज्जलरूवाओ वरतोरणमंडियाओ दिव्वाओ।
वरवेदियजुत्ताओ मणिरयणफुरंतकिरणाओ।।१४३।।
एगेगसिलापट्टे सिंहासण तिण्णि णिद्दिट्ठा।
मणिकंचणपरिणामा णिम्मलससिकंतकिरणोहा।।१४४।।
पंचधणुस्सयतुंगा आयामा ते हवंति पंचसया।
विक्खंभेण य णेया अड्ढादिज्जा धणुसदाणि।।१४५।।
पुव्वाभिमुहा सव्वा सिदादवत्ता सचामराडोवा।
मज्झेसु होंति दिव्वा सिंहासण जिणवरिंदाणं।।१४६।।
सोहम्मीसाणाणं इंदाणं होंति दोसु पासेसु।
दाहिणवामदिसाए जहाकमेणं समुद्दिट्ठा।।१४७।।
ईसाणदिसाभागे भरहजिणिंदाण दिव्वदेहाणं।
पंडुकासिलातले तह जम्मणमहिमा समुद्दिट्ठा।।१४८।।

इन उत्तम शिलाओं की लम्बाई पाँच सौ योजन, विस्तार इससे आधा अर्थात् अढ़ाई सौ योजन और ऊँचाई चार योजन प्रमाण कही गई है।।१४२।।

उक्त शिलाएँ अतिशय उज्ज्वल रूप वाली, उत्तम तोरणों से मण्डित, दिव्य, श्रेष्ठ वेदी से संयुक्त और मणि एवं रत्नों की प्रकाशमान किरणों से सहित हैं।।१४३।।

एक-एक शिलापट्ट पर मणि व सुवर्ण के परिणामरूप तथा निर्मल चन्द्रकान्त मणियों के किरणसमूह से संयुक्त तीन-तीन सिंहासन कहे गए हैं।।१४४।।

ये सिंहासन पाँच सौ धनुष ऊँचे, पाँच सौ धनुष आयत और अढ़ाई सौ धनुष प्रमाण विष्कम्भ से सहित जानना चाहिये।।१४५।।

सब सिंहासन पूर्वाभिमुख, धवल आतपत्र से संयुक्त और चामरों के आटोप से सहित हैं। इनमें मध्य के सिंहासन जिनेन्द्रों के होते हैं।।१४६।।

उनके दोनों पार्श्व भागों में यथाक्रम से दक्षिण और वाम (उत्तर) दिशा में सौधर्म और ईशान इन्द्र के सिंहासन कहे गए हैं।।१४७।।

ईशान दिशाभाग में स्थित पाण्डुशिलातल पर दिव्य देह के धारक भरतक्षेत्र सम्बन्धी जिनेन्द्रों के जन्म की महिमा कही गई है।।१४८।।

अवरविदेहाण तहा वरपंडुयकंबलम्मि धूमदिसे।
वररत्तकंबलम्मि दु णेरदि एरावदाणं तु।।१४९।।
वाउदिसे रत्तसिला पुव्वविदेहाण जिणवरिंदाणं।
जम्मणमहिमा मेरुप्पदाहिणेणं तु गंतूणं।।१५०।।
ससुरासुरदेवगणा आगंतूणं महाविभूदीए।
सिंहासणेसु दिव्वा जम्मणमहिमं पकुव्वंति।।१५१।।
संखवरपडहमणहरसिंहणिणाएहि घंटसद्देहि।
भवणवइवाणविंतरजोइसकप्पाहिवा देवा।।१५२।।
पाऊण जिणुप्पत्तिं हरिसेहि महाविभूदिजुत्तेहि।
आगच्छंति सुरवरा छायंता णहयलं सयलं।।१५३।।
इंदो वि महासत्तो तीहि य परिसाहिं सत्तअणियाहि।
गयवरखंधारूढो एइ महाइड्ढिसंपण्णो।।१५४।।
रविससिजदु त्ति णामा परिसाणं महदरा समुद्दिट्ठा।
अब्भंतरमज्झिमबाहिराण कमसो मुणेयव्वा।।१५५।।
बारसयसयसहस्सा अब्भंतरपारिसा सुरा होंति।
चउदसयसयसहस्सा मज्झिमपरिसा समुद्दिट्ठा।।१५६।।

अग्नि दिशा-आग्नेय दिशा में स्थित उत्तम पाण्डुकम्बला शिला पर अपर विदेह सम्बन्धी जिनेन्द्रों के जन्म की महिमा कही गई है एवं नैऋत्यदिशा में स्थित रक्तकंबला शिला पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है।।१४९।।

वायु दिशा-वायव्य कोण में स्थित रक्ताशिला पर पूर्वविदेह सम्बन्धी जिनेन्द्रों के जन्म की महिमा जानना चाहिए। सुर और असुरों से सहित देवगण मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए महाविभूति के साथ आकर सिंहासनों पर दिव्य जन्ममहिमा को कहते हैं।।१५०,१५१।।

भवनवासी, बानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पाधिपति देव क्रमशः शंख, उत्तम पटह, मनोहर सिंहनाद और घंटा के शब्द से जिन भगवान् की उत्पत्ति को जानकर सहर्ष महाविभूति से युक्त होकर समस्त आकाशतल को आच्छादित करते हुए आते हैं।।१५२,१५३।।

महाबलवान् इन्द्र भी तीन परिषद और सात अनीकों से युक्त हो उत्तम हाथी के कन्धे पर चढ़कर महा ऋद्धि के साथ आता है।।१५४।।

अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिषद् के क्रम से रवि, चन्द्र और जतु नामक महत्तर कहे गए जानना चाहिए।।१५५।।

अभ्यन्तर परिषद देव बारह लाख, मध्यम परिषद चौदह लाख और बाह्य परिषद सोलह लाख प्रमाण कहे गए हैं। ये सब ही देव दिव्य रूप से संयुक्त और नाना प्रकार के

सोलसयसयसहस्सा बाहिरपरिसासुराण परिसंखा।
सव्वे वि दिव्वरूवा णाणाविहपहरणाभरणा।।१५७।।
तिण्णि वि परिसा कहिया एत्तो सत्ताणिया पवक्खामि।
सोहम्मकप्पवासीइंदस्स महाणुभावस्स।।१५८।।
वसभरहतुरयमयगलणच्चणगंधव्वभिच्चवरगाणं।
सत्ताणीया दिट्ठा सत्तहि कच्छाहि संजुत्ता।।१५९।।
चुलसीदिसयसहस्सा वरवसभा संखकुंदसंकासा।
पढमाए कच्छाए पुरदो गच्छंति लीलाहिं।।१६०।।
अडसट्ठिसयसहस्सा एया कोडी हवंति वरवसभा।
जासवणकुसुमवण्णा मणिरयणविहूसिया बिदिए।।१६१।।
तिण्णेव य कोडीओ छत्तीसा सयसहस्स वरवसहा।
णीलुप्पलसंकासा तदियाकच्छम्मि णिद्दिट्ठा।।१६२।।
छच्चेव य कोडीओ बाहत्तरिसयसहस्स वरवसहा।
मरगयमणिकिरणोहा चउत्थकच्छट्ठिया जंति।।१६३।।
तेरह तह कोडीओ चउदाला सयसहस्स वरवसहा।
कणयणिभा विण्णेया पंचमकच्छम्हि णिद्दिट्ठा।।१६४।।

आयुधों एवं आभरणों से विभूषित होते हैं।।१५६, १५७।।

तीनों ही परिषदों का कथन किया जा चुका है। अब यहाँ से आगे महाप्रभाव से युक्त सौधर्म इन्द्र की सात अनीकों का वर्णन करते हैं।।१५८।।

वृषभ, रथ, तुरग, मदगल (हाथी), नर्तक, गन्धर्व और भृत्यवर्ग, इनकी सात कक्षाओं से संयुक्त सात सेनाएँ कही गई हैं।।१५९।।

प्रथम कक्षा में शंख एवं कुंदपुष्प के सदृश धवल चौरासी लाख उत्तम वृषभ लीलापूर्वक आगे जाते हैं।।१६०।।

द्वितीय कक्षा में जपाकुसुम के सदृश वर्ण वाले और मणि एवं रत्नों से विभूषित वे उत्तम वृषभ एक करोड़ अड़सठ लाख होते हैं।।१६१।।

तृतीय कक्षा में नीलकमल के सदृश वर्ण वाले उत्तम वृषभ तीन करोड़ छत्तीस लाख कहे गए हैं।।१६२।।

चतुर्थ कक्षा में स्थित मरकतमणि की किरणों के समूह के समान कान्ति वाले उत्तम वृषभ छह करोड़ बहत्तर लाख होते हैं।।१६३।।

पंचम कक्षा में सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले उत्तम वृषभ तेरह करोड़ चवालीस लाख निर्दिष्ट किए गए हैं।।१६४।।

छव्वीसा कोडीओ अट्ठासीदा य सयसहस्साणि।
छट्ठमकच्छे दिट्ठा भिण्णंजणसच्छहा बसभा।।१६५।।
तेवण्णा कोडीओ छावत्तरि सयसहस्स वरवसभा।
सत्तमकच्छे दिट्ठा किंसुयकुसुमप्पभा णेया।।१६६।।
मज्झे मज्झे तेसिं वज्जंतमहंततूरणिग्घोसं।
जिणजम्मणमहिमाए वसभाणीया समुच्छरिया।।१६७।।
घंटाकिंकिणिणिवहा वरचामरमंडिया मणभिरामा।
मणिकुसुममालपउरा अणोवमा रूवसंपण्णा।।१६८।।
वरकोमलपल्लाणा देवकुमारेहि वाहमाणा ते।
सोहंति दु गच्छंता चलंतधरणीहरा चेव।।१६९।।
कोडीसय छब्भहिया अडसट्ठा लक्ख होंति णिद्दिट्ठा।
सत्तविभागाण तहा वसभाणीयाण परिसंखा।।१७०।।
रूवूणअट्ठ विरलिय दो दो दाऊण तेसु रूवेसु।
अण्णोण्णगुणेण तहा फलेण रूबूणजादेण।।१७१।।

छठी कक्षा में भिन्न अंजन के सदृश कान्ति वाले वृषभ छब्बीस करोड़ अट्ठासी लाख कहे गए हैं।।१६५।।

सातवीं कक्षा में किंशुक कुसुम के समान प्रभा वाले उत्तम वृषभ तिरेपन करोड़ छियत्तर लाख कहे गए समझना चाहिए।।१६६।।

उनके मध्य-मध्य में बजते हुए महावादित्रों के शब्द से सहित वे वृषभानीक उछलते हुए जिन भगवान् के जन्मकल्याणक में जाते हैं।।१६७।।

घंटा व किंकिणियों के समूह से सहित, उत्तम चामरों से मण्डित, मनोहर, प्रचुर मणिमालाओं व पुष्पमालाओं को पहने हुए, अनुपम रूप से सम्पन्न, उत्तम कोमल पलान से सहित और देवकुमारों से चलाए जाने वाले वे वृषभ चढ़ते हुए पर्वतों जैसे शोभायमान होते हैं।।१६८, १६९।।

सात विभागों के वृषभानीकों की संख्या एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख कही गई है।।१७०।।

एक कम आठ अंकों का विरलन करके उन अंकों के ऊपर दो-दो अंक देकर परस्पर गुणा करने से जो फल प्राप्त हो उसमें से एक कम करके शेष से प्रथम कक्षा को गुणा करने पर सातों कक्षाओं सम्बन्धी वृषभानीकों की संख्या प्राप्त होती है, ऐसा ज्ञानवान् जिनेन्द्र भगवान् ने निर्दिष्ट किया है।। १७१-१७२।।

आदिमकच्छं गुणिदे सत्त वि कच्छाण होदि वसभाणं।
परिसंखा णिद्दिट्ठा जिणिंदइंदेहि णाणीहि।।१७२।।
सव्वाणं अणीयाणं कच्छाणं पिंडसंखपरिमाणं।
एस कमो णायव्वो संखेवेण य समुद्दिट्ठं।।१७३।।
सिसिररयरहारहिमचयसंखेंदुमुणालकुंदकुमुदाभा।
धवलादवत्तभासुर धवलरहा पढमकच्छम्मि।।१७४।।
वेरुलियरयणणिम्मियचउचक्कविरायमाण गच्छंति।
मंदारकुसुमसंणिह महारहा विदियकच्छम्मि।।१७५।।
कणयादवत्तचामरधयवढधुव्वंतभासुराडोवा ।
णिद्धंतकणयसुघडियरहपउरा तदियकच्छम्मि।।१७६।।
मरगयरयणविणिम्मियबहुचक्कुप्पण्णसद्दगंभीरा।
दुव्वंकुरदलसंणिह महारहा तह चउत्थीए।।१७७।।
कक्केयणमणिणिम्मियबहुचक्कघुलंतसद्दगंभीरा।
णीलुप्पलदलसंणिभ महारहा होंति पंचमिए।।१७८।।

उदाहरण—८-१=७; २/१, २/१, २/१, २/१, २/१, २/१, २/१; इनके परस्पर का गुणनफल १२८; १२८-१ = १२७; प्रथम कक्षा में ८४००००० ; ८४००००० × १२७ =१०६६८००००० समस्त वृषभानीक संख्या।

सब अनीकों सम्बन्धी कक्षाओं की संख्या के पिंडप्रमाण को लाने के लिए संक्षेप से यही क्रम कहा गया जानना चाहिए।।१७३।।

प्रथम कक्षा में शिशिरकर (चन्द्र), हार, हिमचय, शंख, इन्दु, मृणाल एवं कुंदपुष्प जैसी प्रभा वाले; धवल छत्र से सुशोभित धवल रथ होते हैं।।१७४।।

द्वितीय कक्षा में वैडूर्यमणि से निर्मित चार चाकों से विराजमान और मन्दार कुसुम के सदृश कान्ति वाले महारथ गमन करते हैं।।१७५।।

तृतीय कक्षा में सुवर्णमय छत्र, चामर और हिलते हुए उत्तम ध्वजपटों के आटोप (आडम्बर) से प्रकाशमान तथा अग्निसंयोग से संशोधित निर्मल सुवर्ण से निर्मित प्रचुर रथ गमन करते हैं।।१७६।।

चतुर्थ कक्षा में मरकतमणियों से निर्मित बहुत चाकों से उत्पन्न हुए शब्द से गम्भीर और दूर्वाङ्कुर के पत्तों के सदृश वर्ण वाले महारथ होते हैं।।१७७।।

पाँचवीं कक्षा में कर्केतन रत्नों से निर्मित व बहुत से चाकों के घूमने के शब्द से गम्भीर महारथ नीलोत्पलपत्र के सदृश वर्ण वाले होते हैं।।१७८।।

वरपउमरायमणिमयवरधुरदढअक्खचक्कसंघडिया।
पप्फुल्लकमलसंणिभ महारहा होंति छट्ठीए।।१७९।।
सिहिकंठवण्णमणिमयणिम्मलकिरणोहजालपज्जलिया।
वरइंदणीलसंणिभ महारहा होंति सत्तमिए।।१८०।।
एवं महारहाणं सत्त वि कच्छा जलंतमणिकिरणा।
आयासं छायंता चलिया जिणजम्मकल्लाणे।।१८१।।
वज्जंततूरणिवहा रहकच्छा अंतरेसु सव्वेसु।
गच्छंता पवररहा सोहंति मणोहरा तुंगा।।१८२।।
बहुदेवदेविपुण्णा वरचामरछत्तधयवडा णिवहा।
लंबंतकुसममाला अच्छेरयरूवसंठाणा।।१८३।।
पुव्वक्कएण णेया मायारहिएण चरणसुद्धेण।
धम्मेण तेण लद्धा इंदेण महाविहूईओ।।१८४।।
खरपवणधायवियलियखीरोवहिवरतरंगणिहवण्णा।
वरसियचलंतचामर धवलस्सा पढमकच्छाए।।१८५।।

छठी कक्षा में उत्कृष्ट पद्मराग मणिमय उत्तम धुरा, दृढ़ अक्ष एवं चाकों से संघटित महारथ प्रफुल्ल कमल के सदृश वर्ण वाले होते हैं।।१७९।।

सातवीं कक्षा में मयूरकण्ठ के समान वर्ण वाले व मणियों से निर्मित निर्मल किरणसमूह से देदीप्यमान महारथ उत्तम इन्द्रनील मणि के सदृश कान्ति वाले होते हैं।।१८०।।

इस प्रकार प्रकाशमान मणिकिरणों से सहित महारथों की सातों कक्षाएँ आकाश को आच्छादित करती हुई जिनजन्मकल्याणक में जाती हैं।।१८१।।

सब रथ कक्षाओं के मध्य में बजते हुए वादित्रों के समूह से सहित, उन्नत व मनोहर उत्तम रथ गमन करते हुए शोभायमान होते हैं।।१८२।।

बहुत से देव-देवियों से परिपूर्ण; उत्तम चमर, छत्र और ध्वजापताकाओं के समूह से सहित; लटकती हुई कुसुमों की मालाओं से सुशोभित तथा आश्चर्यजनक रूप एवं आकृति से संयुक्त, उक्त रथरूप महाविभूतियाँ सौधर्म इन्द्र को पूर्वकृत निष्कपट शुद्ध चारित्ररूप धर्म से प्राप्त होती हैं, ऐसा जानना चाहिए।।१८३-१८४।।

प्रथम कक्षा में तीक्ष्ण पवन के घात से विचलित हुए क्षीरोदधि की उत्तम तरंगों के सदृश वर्ण वाले और चलते हुए उत्तम धवल चामरों से सहित धवल अश्व होते हैं।।१८५।।

उदयंतभाणुसंणिभमंदारासोगकमलसच्छाया।
पचलंतचारुचामर रत्ततुरंगा दु विदियाए।।१८६।।
णिद्धंतकणयसंणिहखुरवुडभरजणियरेणुपिंजरिया।
वरगोरोयणसंणिभ वरतुरया तदियकच्छाए।।१८७।।
मरगयवण्णसमुज्जलतुंगमहाकाय गमणपरिहत्था।
अभिणवतमालसामल तुरयवरा तह चउत्थीए।।१८८।।
रयणाभरणविहूसिय मणिकिरणसमूहणासियतमोहा।
णीलुप्पलदलसंणिभ तुरगवरा पंचमाए दु।।१८९।।
ससहरकिरणसमागमविभिण्णवररत्तकुमुदवण्णाभा।
जासवणकुसुमसंणिभ वरतुरया छट्ठमाए दु।।१९०।।
मणपवणगमणचंचलखरखुररवजणियसद्दगंभीरा।
भिण्णिंदणीलसंणिभ वरतुरया सत्तमाए दु।।१९१।।
एवं तुरयाणीया सत्तविभागा हवंति णिद्दिट्ठा।
दिव्वामलरूवधरा णाणाभरणेहि संछण्णा।।१९२।।

द्वितीय कक्षा में उदित होने वाले सूर्य के सदृश अथवा मन्दार, अशोक एवं कमल के सदृश कान्ति वाले तथा चलते हुए सुन्दर चामरों से सहित रक्त तुरंग होते हैं।।१८६।।

तृतीय कक्षा में अग्निसंयोग से शुद्ध किए गए निर्मल सुवर्ण के सदृश व खुरपुटों के भार से जनित धूलि से पिंजरित उत्तम अश्व श्रेष्ठ गोरोचन के सदृश (पीत) होते हैं।।१८७।।

चतुर्थ कक्षा में मरकत जैसे वर्ण वाले उज्ज्वल एवं उन्नत महान् शरीर से संयुक्त तथा गमन में दक्ष उत्तम अश्व नवीन तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण वाले होते हैं।।१८८।।

पंचम कक्षा में रत्नों के आभरणों से विभूषित व मणिकिरणों के समूह से अन्धकार समूह को नष्ट करने वाले श्रेष्ठ अश्व नीलोत्पलपत्र के सदृश वर्ण वाले होते हैं।।१८९।।

छठी कक्षा में शशधर (चन्द्र) के समागम से विकास को प्राप्त उत्तम रक्त कमल जैसे वर्ण वाले श्रेष्ठ अश्व जपाकुसुम के सदृश होते हैं।।१९०।।

सातवीं कक्षा में मन अथवा पवन के समान गमन करने में चंचलता को प्राप्त तीक्ष्ण खुरों के शब्द से उत्पन्न शब्दों से गम्भीर उत्तम अश्व भिन्न इन्द्रनीलमणि के सदृश होते हैं।।१९१।।

इस प्रकार दिव्य व निर्मल रूप को धारण करने वाली और नाना आभरणों से व्याप्त अश्व सेनाएँ सात विभागों से युक्त निर्दिष्ट की गई हैं।।१९२।।

मज्झेसु तूरणिवहा पडहमुदिंगादिसद्दगंभीरा।
वरकाहलमहुररवा पक्खुभियसमुद्दणिग्घोसा।।१९३।।
रयणमया पल्लाणा देवकुमारेहि वाहमाणा ते।
सोहंति महाकाया देवाण विउव्वणा दिव्वा।।१९४।।
सव्वदिसा पूरेंता अणोवमा तेयरूवसंपण्णा।
जिणजम्मणमहिमाए गच्छंति महाबला तुरया।।१९५।।
चुलसीदिलक्खसंखा वियडघडा गुलगुलंतगज्जंता।
गोखीरसंखधवला हत्थिघडा पढमकच्छाए।।१९६।।
अडसट्ठिसया णेया लक्खगुणा बालभाणुसमतेया।
पगलंतदाणगंडा हत्थिहडा विदियकच्छाए।।१९७।।
छत्तीसा तिण्णिसया हत्थिहडा सयसहस्ससंगुणिया।
णिद्धंतकणयवण्णा तदियाए होंति कच्छाए।।१९८।।
बाहत्तरि छच्चसया लक्खगुणा सिरिसकुसुमसंकासा।
उत्तुंगदंतमुसला चउथीए होंति ते णागा।।१९९।।

मध्य में वादित्र समूह से सहित, पटह व मृदंग आदि के शब्द से गम्भीर, उत्तम काहल के मधुर शब्द से युक्त, प्रक्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र जैसे निर्घोष से संयुक्त, रत्नमय पलानों से सहित और देवकुमारों से चलाए जाने वाले वे देवों की विक्रिया से निर्मित महाकाय दिव्य घोड़े शोभायमान होते हैं।।१९३-१९४।।

अनुपम रूप व तेज से सम्पन्न वे महाबलवान् घोड़े सब दिशाओं को पूर्ण करते हुए जिनजन्ममहिमा में जाते हैं।।१९५।।

प्रथम कक्षा में हर्ष से गुल-गुल गरजने वाले चौरासी लाख हाथियों के समूह गोक्षीर अथवा शंख के समान धवल होते हैं।।१९६।।

द्वितीय कक्षा में गण्डस्थल से मद को बहाने वाले उन एक लाख से गुणित एक सौ अड़सठ अर्थात् एक करोड़ अड़सठ लाख हाथियों की घटाएँ बाल सूर्य के सदृश कान्ति वाली जानना चाहिए।।१९७।।

तृतीय कक्षा में एक लाख से गुणित तीन सौ छत्तीस (३,३६०००००) हाथियों की घटाएँ अग्निसंयोग से शुद्ध किए गए सुवर्ण जैसे वर्ण वाली होती हैं।।१९८।।

चतुर्थ कक्षा में उन्नत दाँत रूपी मूसलों से सहित वे एक लाख से गुणित छह सौ बहत्तर (६७२००००) हाथी शिरीष कुसुम के सदृश होते हैं।।१९९।।

तेरससयचउदाला हत्थिहडा सयसहस्ससंगुणिया।
णीलुप्पलसंकासा पंचमिए होंति कच्छाए।।२००।।
छव्वीससया णेया अट्ठासीदा य होंति लक्खगुणा।
जासवणकुसुमवण्णा हत्थिहडा तह य छट्ठीए।।२०१।।
तेवण्णसया णेया छावत्तरि तह य होंति लक्खगुणा।
अंजणगिरिसमतेया हत्थिहडा सत्तमाए दु।।२०२।।
अडसट्ठा छच्चसया दसयसहस्सा हवंति लक्खगुणा।
सत्त वि गयकच्छाणं परिसंखा होंति णायव्वा।।२०३।।
कच्छपमाणं विरलिय इच्छगुणं तेसु उवरि दाऊणं।
अण्णोण्णब्भत्थेण य लद्धेण य रूवरहिदेण।।२०४।।
इच्छगुणरासियाणं आदिधणं संगुणं पुणो किच्चा।
जं लद्धं णायव्वं इच्छधणं होइ सव्वाणं।।२०५।।
कच्छाए कच्छाए पुरदो वज्जंति तूररमणीया।
पडुपडहसंखमद्दलकाहलकोलाहलरवेहिं।।२०६।।

पंचम कक्षा में एक लाख से गुणित तेरह सौ चवालीस (१३४४०००००) हाथियों की घटाएँ नीलोत्पल के सदृश होती हैं।।२००।।

छठी कक्षा में एक लाख से गुणित छब्बीस सौ अट्ठासी (२६८८०००००) हाथियों की घटाएँ जपाकुसुम जैसे वर्ण वाली होती हैं।।२०१।।

सातवीं कक्षा में एक लाख से गुणित तिरेपन सौ छियत्तर (५३७६०००००) हाथियों की घटाएँ अंजनगिरि के समान कान्ति वाली होती हैं।।२०२।।

सातों कक्षाओं के हाथियों की संख्या एक लाख से गुणित दश हजार छह सौ अड़सठ (१०६६८००००) जानना चाहिए।।२०३।।

कक्षा के प्रमाण का विरलन कर उनके ऊपर इच्छित गुणकार (२) को देकर परस्पर गुणा करने से प्राप्त हुई राशि में से एक कम करने पर जो शेष इच्छित गुणकार राशि रहे उससे फिर आदि धन को गुणित कर जो प्राप्त हो उतना सब कक्षाओं का इच्छित धन होता है (देखिए पीछे गा. १७१-७२)।।२०४-२०५।।

प्रत्येक कक्षा के आगे पटु, पटह, शंख, मर्दल और काहल के कोलाहल शब्दों के साथ रमणीय बाजे बजते हैं।।२०६।।

उच्छंगदंतमुसला पभिण्णकरडा मुहा गुलगुलंता।
पगलंतदाणणिज्झरधरणीधरसंणिभा चेव।।२०७।।
लंबंतरयणघंटा णिम्मलमणिकुसुमदामकयसोहा।
णाणापडायचित्ता सिदादवत्तेहि छज्जंता।।२०८।।
लबंतंकण्णचामर मणिकिंकिणिरणरणंतरमणीया।
मणिकणयरज्जुकच्छा कयलीहरछज्जिया रम्मा।।२०९।।
वरदेविदेवपउरा अच्चब्भुदसोहसारसंपण्णा।
हत्थिहडाणं सेण्णं वित्थरइ समंतदो गयणं।।२१०।।
एवं णागाणीया गच्छंता सुरवरा महासत्ता।
दाविंता पुण्णफलं पच्चक्खं जीवलोयस्स।।२११।।
णट्टाणीया वि सुरा णच्चंता बहुविहेहिं रूवेहिं।
गच्छंति मेरुसिहरं जिणजम्मणमहिमअणुराया।।२१२।।
विज्जाहरकुसुमाउहरायारायाहिवाण चरियाणं।
णच्चंति णच्चणसुरा पढमे कच्छम्मि णिद्दिट्ठा।।२१३।।

उन्नत दांतरूपी मूसलों से सहित, गण्डस्थल से मद को बहाने वाले तथा मुख से सहर्ष गरजने वाले वे हाथी बहते हुए मद जैसे झरना से युक्त पर्वत के समान ही प्रतीत होते हैं।।२०७।।

लटकते हुए रत्नमय घंटा से संयुक्त, निर्मल मणियों व कुसुमों की माला से की गई शोभा को प्राप्त, नाना पताकाओं से विचित्र, धवल छत्र से सुशोभित, कानों में लटकते हुए चामरों और मणिमय क्षुद्र घंटिकाओं के रण-रण शब्द से रमणीय, मणि एवं सुवर्णमय कक्षा (हाथी के पेट पर बाँधने की रस्सी) से अलंकृत, कदलीभार से सुशोभित, रमणीय, उत्तम देव-देवियों से प्रचुर तथा आश्चर्यजनक श्रेष्ठ शोभा से सम्पन्न उन हस्तिघटाओं की सेना आकाश में चारों ओर फैल जाती है।।२०८-२१०।।

इस प्रकार महाबलवान् उत्तम नागानीक देव जीवलोक को प्रत्यक्ष में पुण्य फल को प्रगट करते हुए गमन करते हैं।।२११।।

नर्तकानीक देव भी बहुत प्रकार के वेषों से नाचते हुए जिनजन्ममहिमा के अनुराग से मेरु शिखर पर जाते हैं।।२१२।।

नर्तकानीक देव प्रथम कक्षा में विद्याधर, कुसुमायुध (कामदेव) राजा और राजाधिप के चरित्रों का अभिनय करते हैं।।२१३।।

पुहइवईणं चरियं सयलद्धमहंतमंडलीयाणं।
विदियाए कच्छाए णच्चंता सुरवरा जंति।।२१४।।
बलदेवहरिगणाण य तप्पडिवक्खाण तह य वरचरियं।
णच्चंति अमरविंदा णिद्दिट्ठा तदियकच्छा।।२१५।।
चोद्दसरयणवईणं णवणिहिअक्खीणकोसणाहाणं।
चक्कहराण य चरियं चउत्थकच्छम्मि णच्चंति।।२१६।।
सव्वाणं चरिमाणं सलोयवालाण सुरवरिंदाणं।
चरियं णच्चंति सुरा कच्छाए पंचमाए दु।।२१७।।
णिम्मलवरबुद्धीणं अणिमादिविसुद्धरिद्धिपत्ताणं।
गणहरदेवाण सुरा चरियं णच्चंति छट्ठीए।।२१८।।
वरपाडिहेरअइसयकल्लाणअणंतसोक्खजुत्ताणं।
जिणइंदाणं चरियं सत्तमकच्छम्मि णच्चंति।।२१९।।
तेवण्णकोडिदेवा छाहत्तरिलक्ख दिव्वदेहधरा।
णच्चंति य जिणचरियं सुरसुंदरिसंजुदा धीरा।।२२०।।

द्वितीय कक्षा के नर्तक देव समस्त अर्धमण्डलीक और महामण्डलीक राजाओं के चरित्र का अभिनय करते हुए जाते हैं।।२१४।।

तृतीय कक्षा के नर्तक देवगण बलदेव, वासुदेव और प्रतिशत्रुओं के (प्रतिनारायणों के) उत्तम चरित्र का अभिनय करते हैं।।२१५।।

चतुर्थ कक्षा के नर्तक देव चौदह रत्नों के अधिपति और नौ निधियों तथा अक्षीण कोष के स्वामी चक्रवर्तियों के चरित्र का अभिनय करते हैं।।२१६।।

पंचम कक्षा के नर्तक देव चरमशरीरियों और लोकपालों सहित समस्त इन्द्रों के चरित्र का अभिनय करते हैं।।२१७।।

छठी कक्षा के नर्तक देव निर्मल, उत्तम बुद्धि के धारक तथा अणिमादि विशुद्ध ऋद्धियों को प्राप्त हुए गणधर देवों के चरित्र का अभिनय करते हैं।।२१८।।

सातवीं कक्षा के नर्तक देव उत्तम प्रातिहार्य, अतिशय, कल्याणक एवं अनन्त सुख से संयुक्त जिनेन्द्रों के चरित्र का अभिनय करते हैं।।२१९।।

दिव्य देह के धारक उपर्युक्त तिरेपन करोड़ छियत्तर लाख (७ - १ = ६; २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४ ; ८४००००० × ६४ = ५३,७६०००००) धीर नर्तकानीक देव-देवांगनाओं से संयुक्त होकर जिनचरित्र का अभिनय करते हैं।।२२०।।

इच्छाठाणं विरलिय काऊणं एयरूवपरिहाणी।
इच्छगुणं दाऊण य विरलियरूवेसु सव्वेसु।।२२१।।
अण्णोण्णब्भत्थेण य जाएण य तेण रासिणा गुणिदे।
इच्छाण मूलरासिं इच्छधणं होइ सव्वाणं।।२२२।।
रूऊणे अद्धाणे विरलिय रासिम्मि इच्छगुण दिण्णे।
अण्णोण्णगुणेण हदे आदिधणं हवइ इच्छफलं।।२२३।।
दिव्वामलदेहधरा दिव्वालंकारभूसियसरीरा।
णच्चंता गायंता मेरुं तत्तो समुप्पइया।।२२४।।
गंधव्वाण अणीया सत्तस्सरसंजुदा दु गायंता।
गच्छंति सुरा पवरा जिणजम्मणजणियसंतोसा।।२२५।।
महुरमणोहरवक्का दिव्वाहरणेहि भूसिया देवा।
सज्जसरेहि य जुत्ता कच्छाए होंति पढमाए।।२२६।।
रिसभसरेण य जुत्ता वत्थाभरणेहि मंडिया दिव्वा।
विदियाए कच्छाए महुरं गायंति णच्चंति।।२२७।।

इच्छित स्थान को एक अंक से हीन कर विरलन करके विरलित सब अंकों के प्रति इच्छित गुणकार को देकर परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उससे इच्छित मूल राशि को गुणा करने पर इच्छित सर्वधन प्राप्त होता है (देखिए पीछे गाथा २०४-५)।।२२१-२२२।।

एक कम अध्वान का (स्थानों का) विरलन करके विरलित राशि के ऊपर इच्छित गुणकार को देकर परस्पर गुणित करने से जो प्राप्त हो उससे आदि धन को गुणा करने पर इच्छाफल (इच्छित धन) प्राप्त होता है (देखिये पीछे गाथा २०४-५)।।२२३।।

दिव्य एवं निर्मल देह के धारक और दिव्य अलंकारों से विभूषित शरीर वाले उक्त देव नाचते-गाते हुए वहां से मेरु के ऊपर जाते हैं।।२२४।।

गन्धर्वों की सेना के श्रेष्ठ देव जिन भगवान् के जन्म से उत्पन्न हुए सन्तोष से सात स्वर युक्त गान करते हुए जाते हैं।।२२५।।

मधुर एवं मनोहर मुख वाले तथा दिव्य आभरणों से भूषित उक्त देव प्रथम कक्षा में षड्ज स्वरों से युक्त होते हैं।।२२६।।

वस्त्राभरणों से मण्डित उक्त दिव्य देव द्वितीय कक्षा में ऋषभ स्वर से युक्त मधुर गान करते व नाचते हैं।।२२७।।

णीलुप्पलणीसासा अहिणवलावण्णरूवसंपण्णा।
तदियाए कच्छाए गंधारसरेण गायंति।।२२८।।
मज्झिमसरेण जुत्ता जलंतवरमउडकुंडलाभरणा।
गायंति पवरदेवा कच्छाए तह चउत्थीए।।२२९।।
पंचमसरेण जुत्ता सुकुमरसिंगारसद्दगंभीरा।
कच्छाए पंचमिए णिद्दिट्ठा सुरवरा णिवहा।।२३०
धइवदसरेण जुत्ता सायरणिग्घोसमणहरालावा।
छट्ठीए कच्छाए अमरकुमारा समुद्दिट्ठा।।२३१।।
गायंति महुरमणहरणिसायघोसेण भासुरा अमरा।
सुरसुंदरिसंजुत्ता सत्तमिए तह य कच्छाए।।२३२।।
बंसीवीणावच्चिसमहुयरिकंसालतालियादीहि।
संजुत्ता देवीओ गायंति जिणाण भत्तीए।।२३३।।
ढक्कामुदिंगझल्लरिमहसारमउंदकिण्णरादीहिं।
वज्जंतमहुरमणहरगंधव्वा सुरगणा चलिया।।२३४।।

तृतीय कक्षा में नीलोत्पल के समान निश्वास वाले और अभिनय लावण्यमय स्वरूप से सम्पन्न वे देव गान्धार स्वर से गाते हैं।।२२८।।

चतुर्थ कक्षा में चमकते हुए मुकुट एवं कुण्डलरूप आभरणों से सहित वे उत्तम देव मध्यम स्वर से युक्त होकर गाते हैं।।२२९।।

पांचवीं कक्षा में सुकुमार (सुन्दर) आभूषणों के शब्द से गम्भीर उक्त श्रेष्ठ देवों के समूह पंचम स्वर से युक्त कहे गये हैं।।२३०।।

छठी कक्षा में समुद्र के निर्घोष के समान मनोहर आलाप वाले देवकुमार धैवत स्वर से युक्त कहे गए हैं।।२३१।।

सातवीं कक्षा में सुन्दर कान्ति वाले उक्त देव-देवांगनाओं से संयुक्त होकर मधुर एवं मनोहर निषाद स्वर से गाते हैं।।२३२।।

वंशी, वीणा, बच्च (व्वी) सक, मधुकरी, कांस्याल और ताल (कंसिका) आदि वाद्यविशेषों से संयुक्त देवियाँ जिन भगवान् की भक्ति से गान करती हैं।।२३३।।

ढक्का, मृदंग, झालर, महासार, मुकुंद (वाद्यविशेष) और किन्नर आदि वादित्रों को बजाते हुए मधुर एवं मनोहर गन्धर्व देवों के समूह प्रस्थित हुए।।२३४।।

सायरतरंगसंणिभ भमरंजणसच्छहा जगजगंता।
पढमाए कच्छाए किण्हद्धयसंकुला णेया।।२३५।।
कंचणदंडुत्तुंगा मणिरयणफुरंतभासुराडोवा।
चामरचलंतसिहरा णीलद्धवसंकुला विदिए।।२३६।।
वेरुलियदंडणिवहा कओदवण्णेहि वत्थणिवहेहि।
देवकुमारकरत्था पंडुद्धयसंकुला तदिए।।२३७।।
करिसीहवसहदप्पणसिहिसारसगरुडचक्करविसिहरा।
मरगयदंडुत्तुंगा कणयमया तह य चोत्थीए।।२३८।।
उब्भिण्णकमलपाडलमंदारासोयकिंसुकुसुमाभा।
विद्दुमदंडुत्तुंगा पउमधया पंचमाए दु।।२३९।।
गोखीरकुंदहिमचयसरयब्भतुसारहारसंकासा।
णिम्मलकंचणदंडा धवलधया छट्ठकच्छाए।।२४०।।
मणिगणफुरंतदंडा मुत्तादामेहिं मंडिया दिव्वा।
धवलादवत्तणिवहा सत्तमियाए दु कच्छाए।।२४१।।

प्रथम कक्षा में समुद्र तरंग के सदृश अथवा भ्रमर व अंजन के समान प्रभा वाले जगमगाते हुए (भृत्य) कृष्ण ध्वजाओं से युक्त जानना चाहिये।।२३५।।

(उक्त भृत्य) द्वितीय कक्षा में उन्नत सुवर्णदण्ड से संयुक्त, मणि एवं रत्नों के प्रकाशमान आटोप से सहित तथा शिखर पर चलते हुए चामरों से शोभायमान नीली ध्वजाओं से संयुक्त होते हैं।२३६।।

तृतीय कक्षा में वैडूर्य मणिमय दण्डसमूह से संयुक्त और कापोत वर्ण वस्त्र समूहों से सहित वे कुमार देवों के हाथों में स्थित ध्वजासमूह से युक्त शुक्लवर्ण होते हैं।।२३७।।

चतुर्थ कक्षा में हाथी, सिंह, वृषभ, दर्पण, मयूर, सारस, गरुड़, चक्र, सूर्य और चन्द्र, ये उन्नत मरकतमय दण्ड से संयुक्त ध्वजाएँ सुवर्णमय (पीत) होती हैं।।२३८।।

पाँचवीं कक्षा में विकसित कमल, पाटल, मंदार, अशोक और किंशुक कुसुम के समान कान्ति वाली पद्मध्वजाएँ मूँगे के उन्नत दण्ड से संयुक्त होती हैं।।२३९।।

छठी कक्षा में गोक्षीर, कुंद पुष्प, हिमसमूह, शरत्कालीन मेघ, तुषार और हार के सदृश धवल ध्वजाएँ निर्मल सुवर्ण दण्ड से संयुक्त होती हैं।।२४०।।

सातवीं कक्षा में मणिगणों से प्रकाशमान दण्ड से सहित और मुक्तामालाओं से मण्डित दिव्य धवल आतपत्रों के समूह होते हैं।।२४१।।

एवं सत्त वि कच्छा भिच्चाणीयाण होंति णायव्वा।
जिणभत्तिरायरत्ता गच्छंति महाणुभावेण।।२४२।।
बावण्णा कोडीओ बाणउदा लक्ख होंति णिद्दिट्ठा।
धयणिवहाणं संखा पवणपणच्चंतसोहंता।।२४३।।
तेवण्णा कोडीओ छावत्तरिलक्ख कुंदधवलाणं।
छत्ताणं परिसंखा णायव्वा रयणचित्ताणं।।२४४।।
छाहत्तरिलक्खजुया छादाला सत्तकोडिसय संखा।
सत्ताणीयाण तहा उणवण्णाणं तु कच्छाणं।।२४५।।
चुलसीदिलक्खगुणिदे सत्तावीसुत्तरेण य सएण।
सत्तगुणेणुप्पज्जइ सत्तणीयाण परिसंखा।।२४६।।
चुलसीदिलक्खदेवा पढमाए तह य होंति कच्छाए।
सव्वाणं अणियाणं आदिधणं एस णिद्दिट्ठं।।२४७।।
विदियादीकच्छाणं दुगुणा दुगुणा हवंति णादव्वा।
एवं सत्त वि कच्छा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं।।२४८।।

इस प्रकार भृत्यानीकों की सात कक्षाएँ होती हैं जो जिनभक्तिराग में अनुरक्त होकर महाप्रभाव से जाती हैं।।२४२।।

पवन से प्रेरित होकर नाचने वाली उन शोभायमान ध्वजाओं के समूहों की संख्या बावन करोड़ बानवे लाख निर्दिष्ट की गई है।।२४३।।

कुन्दपुष्प के समान धवल और रत्नों से विचित्र छत्रों की संख्या तिरेपन करोड़ छियत्तर लाख जानना चाहिए।२४४।।

सात अनीकों सम्बन्धी उनंचास कक्षाओं की संख्या सात सौ छियालीस करोड़ छियत्तर लाख है।।२४५।।

सात से गुणित एक सौ सत्ताईस से चौरासी लाख को गुणा करने पर उपर्युक्त सात अनीकों की संख्या उत्पन्न होती है।

(८४००००० × (१२७ × ७) = ७४६,७६,०००००)।।२४६।।

प्रथम कक्ष में चौरासी लाख देव होते हैं। यह सब अनीकों का आदिधन कहा गया है।।२४७।।

द्वितीयादिक कक्षाओं का प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दूना-दूना जानना चाहिए। इस प्रकार सर्वदर्शियों ने सातों कक्षाओं का स्वरूप कहा है।।२४८।।

सोहम्मसुरवरस्स दु सत्ताणीया समासदो वुत्ता।
अवसेससुरिंदाणं एसेव कमो मुणेयव्वो।।२४९।।
एसेव लोयपालाण चारुरूवाण देवरायाणं।
णवरि विसेसो णेओ परिवारा होंति अद्धद्धा।।२५०।।
धणुफलहसत्तितोमरणाणाविहपहरणेहि बहुवेहि।
इंदस्स पायरक्खा असंखदेवा मुणेयव्वा।।२५१।।
इंदो वि देवराया आरुहिऊणं गयंदपट्ठम्मि।
सव्वादरेण जुत्तो गच्छइ परमाए भत्तीए।।२५२।।
अह सो सुरिंदहत्थी एरावणणामदो त्ति विक्खाओ।
जोयणलक्खपमाणं विउव्वइ णिम्मलं देहं।।२५३।।
संखेंदुकुंदधवलं णाणाहरणेहि मंडियं दिव्वं।
घंटारणंतकक्खं तारायणभूसियं कुंभं।।२५४।।
बत्तीसवरमुहाणि य कंचणमणिरयणदामणिवहाणि।
एगेगदिसाभागे णायव्वा तस्स णागस्स।।२५५।।

यहाँ संक्षेप में सौधर्म इन्द्र की सात कक्षाओं का कथन किया गया है। शेष सुरेन्द्रों की सात अनीकों का भी यही क्रम समझना चाहिए।।२४९।।

सुन्दर स्वरूप वाले इन्द्रों के लोकपालों का भी यही क्रम जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उनके परिवार आधे-आधे होते हैं।।२५०।।

धनुषफलक, शक्ति और तोमर इत्यादि नाना प्रकार के बहुत से शस्त्रों से सुसज्जित असंख्यात देव इन्द्र के पादरक्षक जानना चाहिए।।२५१।।

देवों का राजा इन्द्र भी गजराज की पीठ पर चढ़कर पूर्ण आदर से युक्त होता हुआ अतिशय भक्ति से वहाँ जाता है।।२५२।।

ऐरावण—ऐरावत नाम से विख्यात वह इन्द्र का हाथी एक लाख योजन प्रमाण निर्मल देह की विक्रिया करता है।।२५३।।

शंख, चन्द्र और कुन्दपुष्प के समान धवल, नाना आभरणों से मण्डित, दिव्य तथा घंटा के शब्दयुक्त कक्षा (हाथी के पेट पर बाँधने की रस्सी) वाला उसका कुम्भस्थल तारागणों (धवल बिन्दुओं) से भूषित होता है।।२५४।।

उस हाथी के एक-एक दिशाभाग में सुवर्ण, मणि एवं रत्नों की मालाओं के समूह से संयुक्त बत्तीस उत्तम मुख होते हैं।।२५५।।

एक्केक्कम्मि मुहम्मि दु मणिकंचणमंडिदम्मि दिव्वम्मि।
अट्ठट्ठ धवलदंता णाणामणिरयणपरिणामा।।२५६।।
एक्केक्कम्मि य दंते एक्केक्का सरवरा विमलतोया।
एक्केक्कलरवरम्मि दु एक्केक्का कमलगच्छाणि।।२५७।।
एगेगकमलसंडे एगेगविचित्तवेदिसंजुत्ता।
एगेगदिसाभागा एगेगा तोरणा रम्मा।।२५८।।
एगेगम्मि य गच्छे बत्तीसा वियसिया महापउमा।
पउमेसु तेसु णेया णाडयसंगीयरमणीया।।२५९।।
एगेगकमलकुसुमा एगेगा जोयणा सुरभिगंधा।
मणिकंचणपरिणामा अमराणं विउव्वणा दिव्वा।।२६०।।
एगेगकमलकुसुमे एगेगा णाडया मुणेयव्वा।
एगेगणाडयम्मि य अच्छरसा होंति बत्तीसा।।२६१।।
इट्ठाणि पियाणि तहा कंताणि य कोमलाणि रूवाणि।
विउरुव्विऊण बहुसो णच्चंति अणोवमगुणड्ढं।२६२।।
समतालकंसतालं वरवीणाविविहवंसवामिस्सं।
वरसुरवसद्दगहिरं णट्टं णच्चंति देवीओ।।२६३।।

मणि और सुवर्ण से मण्डित एक-एक दिव्य मुख में नाना मणियों एवं रत्नों के परिणामरूप आठ-आठ धवल दाँत होते हैं।।२५६।। एक-एक दाँत पर निर्मल जल से परिपूर्ण एक सरोवर और एक-एक सरोवर में एक-एक कमलसमूह होता है।।२५७।।

एक कमलसमूह में एक-एक विचित्र वेदी से संयुक्त एक-एक दिशाभाग में स्थित एक-एक रमणीय तोरण होता है।।२५८।। एक-एक गच्छ में विकसित बत्तीस महापद्म होते हैं। उन पद्मों पर नाट्य व संगीत से रमणीय तथा एक-एक योजन प्रमाण फैलने वाली सुरभि गन्ध से संयुक्त एक-एक कमल पुष्प होता है। मणियों एवं सुवर्ण के परिणामरूप ये दिव्य पुष्प देवों की विक्रिया रूप होते हैं।।२५९-२६०।।

एक-एक कमलकुसुम पर एक-एक नाट्यशाला और एक-एक नाट्यशाला में बत्तीस अप्सरायें होती हैं।।२६१।।

ये अप्सरायें इष्ट, प्रिय, कान्त तथा कोमल रूपों की विक्रिया कर अनुपम गुणों से युक्त बहुत प्रकार से अभिनय करती हैं।।२६२।।

उक्त देवियाँ समताल से युक्त कांस्यताल, उत्तम वीणा और विविध प्रकार की बाँसुरियों से मिश्रित तथा उत्तम मृदंग के शब्द से गम्भीर नाट्य अभिनय करती हैं।।२६३।।

अत्थ कयपल्लवेहि य मुहभंगवियारपायचलणेहि।
णच्चंति अच्छराओ दक्खिणइंदस्स बहुगीओ।।२६४।।
धम्महदप्पुप्पाइय ताओ रइरागरहसजणणाइं।
रूवाइं अच्छराओ रमयंति अच्छेरयसमाइं।।२६५।।
कंतेहि कोमलेहि य अंगेहि अणंगरागजणणेहि।
णच्चंति अच्छराओ गइंदसरकमलसंडेसु।।२६६।।
एवं रूववईओ देवीओ णच्चमाण सव्वाओ।
गच्छंति पहिट्ठमणा जिणजम्मणमहिमकल्लाणे।।२६७।।
कोडी सत्तावीसा अच्छरसाओ हवंति इंदस्स।
अट्ठेव महादेवी लक्खं पुण वल्लहीयाओ।।२६८।।
एयाओ देवीओ आरुहिऊणं गइंदपट्ठम्मि।
अइआयरजुत्ताओ जम्मणमहिमाए गच्छंति।।२६९।।
दक्खिणइंदस्स जहा सत्ताणीयादियाण परिसंखा।
उत्तरइंदस्स तहा परिसंखा होंति णायव्वा।।२७०।।
ईसाणिंदो वि तहा आरुहिऊणं महंत वसहम्मि।
महदाइड्ढिसमुदओ आगच्छइ भत्तिराएण।।२७१।।

जहाँ दक्षिण इन्द्र (सौधर्म) की बहुत सी अप्सराएँ लतापल्लवों से, मुखभंगविकार से और पाद संचार से युक्त नृत्य करती हैं।।२६४।।

ये अप्सराएँ मन्मथ (काम) के दर्प को उत्पन्न करने वाले व रतिरागरहस्य के जनक आश्चर्यकारक वेषों को रचती हैं।।२६५।।

उक्त अप्सराएँ गजेन्द्र के दातों पर स्थित तालाबों के कमलसमूहों पर कामविषयक राग को उत्पन्न करने वाले कान्त (रमणीय) व कोमल अंगों से नाचती हैं।।२६६।।

इस प्रकार नृत्य करने वाली उक्त सब रूपवती देवियाँ मन में हर्षित होकर जिन भगवान् के जन्मकल्याणक में जाती हैं।।२६७।।

इन्द्र के सत्ताईस करोड़ अप्सराएँ, आठ महादेवियाँ और एक लाख वल्लभाएँ होती हैं।।२६८।। ये देवियाँ गजराज की पीठ पर आरूढ होकर अतिआदरयुक्त होती हुई जन्ममहिमा में जाती हैं।।।२६९।।

जिस प्रकार दक्षिण इन्द्र की सात अनीकादिकों की संख्या है उसी प्रकार उत्तर इन्द्र की सात अनीकादिकों की संख्या जानना चाहिए।।२७०।। उसी प्रकार ईशान इन्द्र भी महान् वृषभ पर आरूढ़ हो बड़ी ऋद्धि से युक्त होकर भक्ति से यहाँ आता है।।२७१।।

सव्वाणं इंदाणं सत्ताणीया हवंति णिद्दिट्ठा।
तिण्णि य परिसा णेया असंख तह आदरक्खा य।।२७२।।
सव्वे दि सुरवरिंदा जम्मणमहिमेण चोइया संता।
सगसगविहूइसहिया छायंता णहयलं एंति।।२७३।।
अवसेसा वि य णेया णाणाजंपाणवाहणारूढा।
सोहम्मादी जाव दु अच्चुदकप्पं सुरा चलिया।।२७४।।
भवणवइवाणविंतरजोइसिया विविहवाहणारूढा।
जिणसासणभत्तिरया महाविहूईहिं ते चलिया।।२७५।।
अहमिंदा वि य देवा आसणकंपेण वोहिया संता।
गंतूण य सत्तपयं तत्थेव ठिया णमंसंति।।२७६।।
सेदादवत्तणिवहा वरचामरधुव्वमाण बहुमाणा।
णाणापडायचिण्हा बहुविहवरवाहणारूढा।।२७७।।
कंकणपिणद्धहत्था कंठाकडिसुत्तभूसियसरीरा।
पजलंतमहामउडा मणिकुंडलमंडियागंडा।।२७८।।

सब इन्द्रों के सात अनीक होती हैं। इनके अतिरिक्त उनके तीन पारिषद और असंख्यात आत्मरक्षक देव होते हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिए।।२७२।।

सभी इन्द्र जन्म महिमा से प्रेरित होकर अपनी-अपनी विभूति के साथ आकाशतल को व्याप्त करते हुए आते हैं।।२७३।।

सौधर्म कल्प से लेकर अच्युत कल्प तक के शेष देव भी नाना जम्पान (वाहन विशेष) वाहनों पर चढ़कर चल देते हैं।।२७४।।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव भी विविध वाहनों पर चढ़कर जिन-शासन की भक्ति में रत होते हुए महाविभूतियों के साथ प्रस्थान करते हैं।।२७५।।

अहमिन्द्र देव भी आसन के कम्पित होने से प्रबोधित होते हुए सात पैर जाकर वहीं स्थित होकर नमस्कार करते हैं।।२७६।।

धवल छत्रों के समूह से सहित, ढुरते हुए उत्तम चामरों से संयुक्त, अतिशय आदर सहित, नाना प्रकार की पताकाओं के चिह्नों से संयुक्त, बहुत प्रकार के उत्तम वाहनों पर आरूढ़, हाथ में कंकण पहने हुए, कंठा और कटिसूत्र से विभूषित शरीर वाले, देदीप्यमान महामुकुट से सहित, मणिमय कुण्डलों से मण्डित कपोलों से संयुक्त, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, केयूर से विभूषित महाबाहुओं से सहित, त्रुटित (हाथ का एक आभूषण) और अंगदयुक्त वेष से सहित उत्तम वस्त्रों से विभूषित देह के धारक, गन्ध से व्याप्त

हारविराइयवच्छा केऊरविहूसिया महाबाहू।
तुडियंगदणेवत्था वरवत्थविहूसिया देहा।।२७९।।
गंधड्ढकुसुममालामलयंदणसुरहिगंधणिस्सासा।
सुकुमालपाणिपादा बहुविहवण्णुज्जलसरीरा।।२८०।।
एवं ते देवगणा आगंतूणं महाविभूदीए।
मंदरगिरिस्स सिहरे परवंडुवणे विसालम्मि।।२८१।।
सिंहासणेसु णेया णाणामणिविप्फुरंतकिरणेसु।
जिणइंदवरकुमारे खीरोदजलेण ण्हाविंति।।२८२।।
जोयणमुहवित्थारा अट्ठेव य जोयणा सुगंभीरा।
अट्ठ सहस्सा कलसा मणिकंचणरयणकयसोहा।।२८३।।
रयणकलसेहिं तेहि य खीरोदसुगंधसलिलपुण्णेहिं।
मुच्चंति जिणाणुवरिं एगीभूया सुरा सव्वे।।२८४।।
जइ ते धारावडणा पव्वदसिहरे पडंति बेगेण।
तो सो पव्वदसिहरो सयखंडो तक्खणे होइ।।२८५।।
सब्बे वि जिणवरिंदा अणंतविरिया अणंतमाहप्पा।
ते पुण धारावडणा भण्णंति कुसग्गाबिंदु व्व।।२८६।।

कुसुममाला और निर्मल चन्दन की सुगन्धित गन्ध के समान निश्वास वाले, सुकुमार हाथ व पैरों से सहित और बहुत प्रकार के वर्णयुक्त उज्ज्वल शरीर वाले, इस प्रकार के वे देवगण महाविभूति के साथ मन्दरगिरि के शिखर पर विशाल व उत्तम पाण्डुकवन में स्थित नाना मणियों की चमकती हुई किरणों से सहित सिंहासनों पर श्रेष्ठ जिनेन्द्रकुमारों को क्षीर समुद्र के जल से नहलाते हैं—अभिषेक करते हैं।२७७-२८२।।

एक योजन प्रमाण मुखविस्तार से सहित, आठ योजन गहरे ऐसे मणि, सुवर्ण एवं रत्नों से शोभायमान जो एक हजार आठ कलश होते हैं, क्षीरसमुद्र के जल से परिपूर्ण उन रत्नमय कलशों द्वारा सब देव एकत्रित होकर जिनभगवानों के ऊपर (जलधारा) छोड़ते हैं।।२८३-२८४।।

यदि वे धारा पतनवेग से पर्वत शिखर पर गिरे तो वह पर्वत शिखर तत्क्षण सौ खण्ड हो जाय।।२८५।।

अनन्त बल और अनन्त माहात्म्य से संयुक्त सब जिनेन्द्र उन धारापतनों को कुश के अग्रभाग पर स्थित बूँद के समान मानते हैं।।२८६।।

पयढक्कसंखकाहलमुदिंगणिवहेहिं कंसतालेहिं।
झल्लरिभेरीहि तहा दुंदुहिसद्देहि विविहेहि।।२८७।।
मद्दलतिवलीहिं तहा भेरीसद्देहि उवहिघोसेहि।
जयघंटरवेहिं पुणो भंभारवमेवरावेहिं।।२८८।।
पहुपडहरवेहिं तहा सायरगंभीरसद्दणिवहेहिं।
वज्जंततूरणिवहं फुडियं व सपव्वदा धरणी।।२८९।।
ण्हाविंता भत्तीए वत्थालंकारभूसिवं किच्चा।
अणुलिंपिऊण वच्छा कुंकुमपंकेहि दिव्वेहि।।२९०।।
थोऊण जिणवरिंदं धुईहि संभूदगुणविसालाहि।
जेणागदा पडिगदा धम्माणुराया सुरा सव्वे।।२९१।।
पंचमणाणसमग्गं पंचमगाइदेसयं पउमणाहं।
वरपउमणंदिणमियं वंदे पउमप्पहं सिरसा।।२९२।।

इय जंबूद्वीवपण्णत्तिसंगहे महाविदेहाहियारे
चउत्थो उद्देसो समत्तो।।४।।

ढक्का, शंख, काहल, मृदंग इनके समूह से; कांस्यताल, झालर, भेरी व दुंदुभि इनके विविध शब्दों से; मर्दल, तिवली तथा समुद्र घोष के समान भेरी शब्दों से; पुनः जयघंटा शब्दों से, मेघ के शब्द के समान भंभा शब्दों से, समुद्र के गम्भीर शब्दसमूह के समान पटुपटह शब्दों से तथा अन्य वाद्यसमूह के बजने पर मानो पर्वत सहित पृथ्वी विदीर्ण हो गई थी।।२८७-२८९।।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक नहला—अभिषेक कर व वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके पश्चात् दिव्य कुंकुमपंक का लेपन कर विशाल गुणों को प्रगट करने वाली स्तुतियों द्वारा स्तवन करके धर्मानुरागयुक्त वे सब देव जिस प्रकार से आए थे उसी प्रकार से वा४पस चले जाते हैं।।२९०-२९१।।

पंचम केवलज्ञान से सम्पन्न, पंचमगति (मोक्ष) के उपदेष्टा और श्रेष्ठ पद्मनन्दि द्वारा नमस्कृत पद्मनाथ जिनेन्द्र को मैं शिर से नमस्कार करता हूँ।।२९२।।

।। इस प्रकार जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में महाविदेहाधिकार का वर्णन करने वाला चतुर्थ उद्देश समाप्त हुआ।।४।।

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

(सिद्धान्तसार दीपक से[1])

षष्ठोऽधिकारः

विदेहस्थान् जिनेन्द्रादीन् प्रणम्य परमेष्ठिनः।
तन्मूर्त्यादींश्च वक्ष्येऽहं विदेहक्षेत्रमुत्तमम्।।१।।

विदेहक्षेत्रस्थ सुदर्शन मेरु का सविस्तार वर्णन :—

तस्यमध्ये महामेरुः सुदर्शनाह्वयोमहान्।
नवाधिकनवत्या चोच्छ्रितःसहस्रयोजनैः।।२।।
योजनानां सहस्रैककन्दस्त्रिक्षण ऊर्जितः।
विचित्राकारसंस्थानोनाभिवद्भाति सुन्दरम्।।३।।
सहस्रयोजनैर्वज्रमयश्चित्राधरान्तगः।
नानारत्नमयो मध्ये स्यादेकषष्टिसम्मितैः।।४।।
सहस्रयोजनैश्चाग्रेशातकुम्भमयोगिरिः।
नित्यो दीप्तोयमत्राष्टत्रिंशत्सहस्रयोजनैः।।५।।

अर्थ :—विदेह क्षेत्रों में स्थित विद्यमान तीर्थङ्करों को, उन (अर्हन्तों) की प्रतिमाओं को तथा पञ्चपरमेष्ठियों को नमस्कार करके मैं उत्तम विदेह क्षेत्र को कहूँगा अर्थात् विदेहक्षेत्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा।।१।।

विदेहक्षेत्रस्थ सुदर्शन मेरु का सविस्तार वर्णन—

अर्थ :–विदेह के मध्य में सुदर्शन नाम का एक श्रेष्ठ महामेरु है, जो ९९००० योजन ऊँचा, १००० योजन की जड़ वाला, अनादिनिधन, श्रेष्ठ, सुन्दर और नाना प्रकार के आकारों से युक्त तथा जम्बूद्वीप की नाभि के सदृश शोभायमान होता है। यह सुमेरु पर्वत चित्रा पृथ्वी के अन्त पर्यन्त अर्थात् मूल में एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, मध्य में इकसठ हजार योजन पर्यन्त अनेकों रत्नमय और अग्रभाग में ३८००० योजन पर्यन्त देदीप्यमान स्वर्णमय एवं अकृत्रिम है।। २-५।।

अब मन्दुबुद्धिजनों को समझाने के लिए इस सुमेरु पर्वत का निरूपण विस्तारपूर्वक किया जा रहा है :—

सुदर्शन मेरु की जड़ चित्रा पृथ्वी को भेद कर एक हजार योजन नीचे तक गई है। जड़—नींव के नीचे मेरु का व्यास १००९०-१०/११ योजन और उसकी परिधि का

१. सिद्धान्तसार दीपक-अधिकार-६, पृ. १५६ से १७४ तक।

अस्य विस्तर व्याख्यानं बालावबोधाय संस्कृतभाषया वक्ष्ये :—

चित्राऽवनिं भित्त्वा स्थितस्य मेरोः कन्दतले व्यासः नवत्यधिकदशसहस्रयोजनानि योजनैकादशभागीकृतानां दशभागाः, परिधिश्चैकत्रिंशत्सहस्रनवशतदशोत्तरयोजनानि योजनैकदशभागानां साधिकौ द्वौ भागौ। ततः क्रमह्रासेन पृथ्वीतलेऽस्य विस्तारः दशसहस्रयोजनानि, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्रषट्शतकिञ्चिदूनत्रयोविंशतियोजनानि। ततः क्रमहान्या तस्य पार्श्वे पञ्चशतयोजनान्यूर्ध्वं गत्वा पञ्चशतयोजन विस्तृतं नानापादपाद्याकीर्णां सुन्दरं नन्दनाख्यं वनं विद्यते। तत्र नन्दनवनसहित मेरोर्बाह्ये विष्कम्भः नवसहस्रनवशतचतुःपञ्चाशद्योजनानि, योजनैकादशभागानां षड्भागाः, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्रचतुःशतैकोनाशीतियोजनानि। नन्दनवनादृते मेरोरभ्यन्तरे व्यासः अष्टसहस्रनवशतचतुःपंचाशद्योजनानि योजनैकादशभागानां षड्भागाः,

---

प्रमाण ३१९१०-२/११ योजन (कुछ अधिक) है। इसके बाद क्रम से हीन होता हुआ (एक हजार की ऊँचाई पर) पृथ्वीतल पर मेरु की चौड़ाई १०००० योजन और परिधि का प्रमाण कुछ कम ३१६२३ योजन है। इसके बाद क्रमशः हानि होते हुए मेरु के दोनों पार्श्वभागों में ५०० योजन ऊपर जाकर ५०० योजन विस्तार वाला नाना प्रकर के वृक्षों से व्याप्त एक सुन्दर नन्दन नाम का वन विद्यमान है। वहाँ नन्दनवन सहित मेरु का बाह्य विष्कम्भ ९९५४-६/११ योजन है। जिसकी परिधि ३१४७९ योजन प्रमाण है। नन्दनवन के बिना मेरु पर्वत का अभ्यन्तर व्यास ८९५४-१/११ योजन और परिधि २८३१६-६/११ योजन है। इसके बाद मेरु पर्वत पर ६२५०० योजन ऊपर जाकर तृतीय सौमनस नाम का सुन्दर वन है। उन ६२५०० योजन के मध्य अर्थात् नन्दनवन के मध्य से मेरु की चौड़ाई ११००० योजन ऊपर तक दोनों पार्श्वभागों में समान रूप से जाती है। इसके बाद ५१५०० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु की चौड़ाई में क्रमशः हानि होती जाती है। इसके बाद वहाँ मेरु की चौड़ाई को युगपत ५०० योजन अर्थात् दोनों पार्श्वभागों में १००० योजन कम हो जाने से वहाँ मेरु के अभ्यन्तर विष्कम्भ का प्रमाण ३२७२-८/११ योजन और वहीं की परिधि का प्रमाण ९९९४-६/११ योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से ३६००० योजन ऊपर जाकर ४९४ योजन व्यास वाले चतुर्थ पाण्डुकवन की प्राप्ति होती है। उन ३६००० योजनों के मध्य अर्थात् सौमनस वन के मध्य से ११००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु का व्यास हानिवृद्धि से रहित सर्वत्र सदृश ही है। इसके बाद अर्थात् समरुन्द्र (समान चौड़ाई) के ऊपरी भाग से २५००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त क्रमिक हानि द्वारा ह्रस्व होता जाता है। वहाँ पर अर्थात् (सौमनसवन से ३६००० योजन

परिधिश्चाष्टाविंशतिसहस्त्रत्रिशतषोडशयोजनानि, योजनैकादशभागानां षड्भागाः, ततोस्य सार्धद्विषष्टि सहस्त्रयोजनान्यूर्ध्व भागं मुक्त्वा तृतीयं सौमनसाख्यं वनं स्यात् । तेषां सार्धद्विषष्टिसहस्त्रयोजनानां मध्येऽयं मेरुः एकादशसहस्त्रयोजन पर्यन्तं समपार्श्व ऋजुर्भवति। ततः क्रमहान्या सार्धैक पञ्चाशत्सहस्त्रयोजनपर्यन्तमेष ह्रस्वोऽस्ति। तत्र पञ्चशतयोजनविस्तृतं तद्वनं मुक्त्वाऽस्याभ्यन्तरे विष्कम्भः द्विसप्तत्यधिकद्वात्रिंशच्छतयोजनानि, योजनैकादशभागानामष्टौ भागाः, परिधिश्च नवसहस्त्रनवशतचतुर्णवतियोजनानि, योजनैकादशभागानां षट्भागाः। ततोऽस्य षट्त्रिंशत्सहस्त्रयोजनान्यूर्ध्वमतिक्रम्य चतुर्णवत्यग्रचतुःशतयोजनविस्तारं चतुर्थं पाण्डुकवनं स्यात्।

तेषां षड्त्रिंशत्सहस्त्रयोजनानां मध्येऽयं एकादशसहस्त्रयोजनपर्यन्तं हानिवृद्धिरहितः सर्वत्र सदृशोऽस्ति। ततः क्रमहान्या पञ्चविंशतिसहस्त्रयोजनान्तं ह्रस्वो भवति। तत्रास्य मस्तके वनाङ्किते विस्तृतिः सहस्त्रयोजनानि परिधिश्च किञ्चिदग्र द्वि षष्ट्यधिकैक

ऊपर) मेरु के मस्तक पर पाण्डुकवन सहित मेरु का विस्तार १००० योजन और उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन प्रमाण प्राप्त होती है। मेरु के इस १००० योजन विस्तार वाले पाण्डुक वन के अर्थात् मेरु के शिखर के मध्य भाग में ४० योजन ऊँची, मूल में १२ योजन चौड़ी, मध्य में ८ योजन चौड़ी और शिखर पर ४ योजन चौड़ी, वैडूर्यरत्नमयी तथा उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य के एक बाल के अन्तराल से स्थित सौधर्म स्वर्ग के प्रथम पटलस्थ ऋजुविमान को स्पर्श नहीं करने वाली चूलिका है।

सुमेरु पर्वत की मूल पृथ्वी (भूमि) पर भद्रसाल नाम का एक अत्यन्त रमणीय वन है। जो अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त है तथा जिसकी पूर्व दिशागत चौड़ाई २२००० योजन, पश्चिम दिशागत चौड़ाई २२००० योजन, उत्तर दिशागत चौड़ाई २५० योजन और दक्षिण दिशागत चौड़ाई भी २५० योजन प्रमाण है। (इस वन का आयाम विदेह क्षेत्र के विस्तार बराबर है। ज० द्वी० प० ४/४३) वहाँ भद्रशालवन की चारों दिशाओं में अनेक प्रकार की विभूतियों से युक्त चार जिनालय हैं। इसी प्रकार नन्दन, सौमनस और पाण्डुक इन प्रत्येक वनों में चार-चार चैत्यालय हैं। इन चैत्यालयों के व्यास आदि का विवेचन मैं (आचार्य) आगे करूँगा।

नन्दनवन की ऐशान दिशा में सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन चौड़ा और शिखर पर ५० योजन चौड़ा अनेक रत्नमय बलभद्र नाम का एक कूट है। उस कूट के ऊपर अनेक प्रकार के कोट, प्रतोलिका, गोपुरद्वार एवं वन आदि से वेष्टित नगर हैं। जिनका अधिपति बलभद्र नाम का व्यन्तरदेव है, जो वहीं रहता है। नन्दनवन में मेरु की पूर्वादि चारों दिशाओं में मानी, चारण, गन्धर्व और चित्र नाम के भवन हैं। जो ५० योजन

त्रिंशच्छतयोजनानि तस्य शिरोमध्यभागे चत्वारिंशद्योजनोन्नता, मूले द्वादशयोजनव्यासा, मध्येऽष्ट योजनविस्तीर्णा मूर्ध्नि चतुर्योजनविस्तृता वैडूर्यरत्नमयी उत्तकुरुभोगभूमिजार्य बालान्तरेण सौधर्म स्वर्गस्याद्यपटलस्य। मृजुविमानमस्पृशन्ती चूलिकास्ति।

मेरोः पूर्वापर दिग् भागयोः प्रत्येकं द्वाविंशतिसहस्त्रयोजनायामं, दक्षिणोत्तरे सार्धद्विशतयोजनविस्तृतं नानापादपाकीर्णं रम्यं भूतले भद्रशालाख्यं वनं स्यात् । तत्रास्य चतुर्दिक्षु नानाविभूतिकलिताश्चत्वारः श्रीजिनालयाः सन्ति। तथा नन्दनसौमनस-पाण्डुकवनानाम् प्रत्येकं चत्वारश्चैत्यालयाभवन्ति। अमीषां चैत्यालयानां व्यासेनाग्रे व्याख्यानं करिष्यामि।

नन्दनवनेऽस्यैशान्यां दिशिशतयोजनाच्छ्रितं, मूलेशतयोजनविस्तृतं, मस्तके पञ्चाशद्योजनविष्कम्भं नानारत्नमयं बलभद्रनामकूटं स्यात्। तस्योपरि विचित्रप्राकारगोपुर-

---

ऊँचे और ३० योजन चौड़े तथा नाना प्रकार की मणियों से खचित हैं। इन भवनों के स्वामी क्रमशः **रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत वर्ण के आभूषणों** से अलंकृत तथा देव समूह से समन्वित सोम, यम, वरुण और कुबेर हैं। इन प्रत्येक लोकपालों की रूप लावण्य आदि से विभूषित साढ़े तीन करोड़ व्यन्तर जाति की दिक्कन्याएँ हैं।

विशेषार्थ :— नन्दनवन में मेरु की पूर्व दिशा में मानी नाम का भवन है, जिसमें रक्तवर्ण के अलङ्कारों से अलंकृत सोम लोकपाल साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ रहता है। दक्षिण के चारण भवन में कृष्णवर्ण के अलङ्कारों से सुशोभित यम लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ रहता है। पश्चिम दिशा सम्बन्धी गन्धर्व नामक भवन में स्वर्णाभा सदृश आभूषणों से विभूषित वरुण लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ और उत्तर दिशा सम्बन्धी चित्र नामक भवन में श्वेतवर्ण के आभूषणों से युक्त कुबेर नाम का लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कन्याओं के साथ निवास करता है।

सौमनसवन में मेरु की चारों दिशाओं में क्रमशः वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णप्रभ नाम के चार भवन हैं। जो पच्चीस योजन ऊँचे और पन्द्रह योजन चौड़े हैं।

पाण्डुकवन में मेरु की चारों दिशाओं में उत्कृष्ट सिंहासन एवं पल्यङ्क आदि से सहित पंचवर्ण के रत्नमय क्रमशः लोहित, अंजन, हारित और पाण्डु नाम के चार भवन हैं। जो १२-१/२ योजन ऊँचे और ७-१/२ योजन चौड़े हैं। इन उपर्युक्त आठों भवनों में से प्रत्येक में साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। इन आठों गृहों के स्वामी जिनबिम्ब के चिह्न से चिह्नित मुकुट वाले देव समूह से वेष्टित तथा क्रमशः रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत वस्त्र एवं अलङ्कारों से अलंकृत, क्रमानुसार स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ

वनादि भूषितानि पुराणि सन्ति। तेषु प्रभुर्व्यन्तरामरो बलभद्राख्यो वसति। तस्मिन्नन्दनवने मणिसंज्ञचारणाह्वयगन्धर्वाख्यचित्रनामानि, पञ्चाशद्योजनोत्सेधानि, त्रिंशद्योजनायाम-विष्कम्भानि, नानामणिविचित्रितानि मेरोश्चतुर्दिक्षु चत्वारि भवनानि सन्ति। तेषु प्रत्येकं रूपलावण्यादिभूषिताः सार्धत्रिकोटिप्रमा दिक्कन्यावसन्ति। तेषां गृहाणां पतयः रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतवस्त्राद्यलंकृताः देववृन्दान्विताः सोम-यम-वरुण-कुवेराह्वयाः लोकपाला भवेयुः।

वज्राख्यवज्रप्रभसुवर्णप्रभनामानि पञ्चविंशति-योजनोत्सेधानि पञ्चदशयोज-नायामविस्तराणि चत्वारिगृहाणि सौमनसवने मेरोश्चतुर्दिक्षु भवन्ति।

लोहिताञ्जनहारितपाण्डुराह्वयानि सार्धद्वादशयोजनोन्नतानि सार्धसप्तयोजनदीर्घ विस्तृतानि वरसिंहासनपल्यङ्कादि सहितानि, पञ्चवर्णरत्नमयानि चत्वारि भवनानि पाण्डुकवनेऽस्य पूर्वादिदिक्चतुष्टये सन्ति। एतेषु अष्टभवनेषु प्रत्येकं सार्धत्रिकोटि-दिक्कुमार्यो वसन्ति। अमीषामष्टगृहाणां स्वामिनो जिनबिम्बाङ्कितशेखराः देववृन्दावृताः,रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतपत्रनेपथ्याद्यलंकृताः, स्वयंप्रभारिष्टजलप्रभवर्ग-प्रभविमानवासिनः सोमयमवरुणकुवेराख्याः सौधर्मैशान सम्बन्धिनो विख्याता लोकपाला भवन्ति। सोमवरुणयोरायुः सार्द्ध पल्यद्वयं स्यात्। यमकुवेरयोरायुः पादोनपल्यत्रयं च।

और वर्गप्रभ (कल्प) विमानों में निवास करने वाले तथा सौधर्मैशान इन्द्रों के सम्बन्ध को प्राप्त सोम, यम, वरुण और कुबेर नाम के लोकप्रसिद्ध चार लोकपाल हैं। इनमें सोम और यम लोकपालों की आयु २-१/२ पल्य तथा वरुण और कुबेर की आयु पौने तीन (२-३/४) पल्य प्रमाण है।

वहाँ नन्दनवन में पूर्वदिशा स्थित चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में नन्दन और मन्दर नाम के दो कूट हैं। दक्षिण दिशा स्थित चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में निषध और हिमवत् नाम के दो कूट हैं। पश्चिम दिशा सम्बन्धी चैत्यालय के दोनों पार्श्व भागों में रजत और रुचक नाम के दो कूट हैं तथा उत्तर दिशा सम्बन्धी जिनालय के दोनों पार्श्व भागों में सागर और वज्र नाम के दो कूट हैं। इन आठों कूटों की ऊँचाई ५०० योजन, भूव्यास ५०० योजन, मध्य व्यास ३७५ योजन और मुख व्यास २५० योजन प्रमाण है। इन कूटों के शिखरों पर दिक्कुमारियों के एक कोस लम्बे, अर्धकोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे तथा नाना प्रकार के रत्नमय भवन बने हैं। इन आठों भवनों में क्रमशः मेघङ्करा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमालिनी और अनन्दिता नाम की दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। इस प्रकार नन्दनवन के समान सर्वकूट, दिक्कुमारियों के भवन आदि सौमनस वन में भी हैं।

तत्रैव नन्दनवने पूर्वदिक् चैत्यालयस्य पार्श्वयोर्द्वयोः नन्दनमन्दराख्ये द्वे कूटे भवतः। दक्षिणदिगभागस्थजिनालयस्य द्वि पार्श्वयोः निषधहिमवत्संज्ञे कूटे द्वे स्तः। पश्चिमदिग् चैत्यालयस्योभयपार्श्वयोः रजतरुचकाह्वये द्वे कूटे स्यातां। उत्तरदिग्जिनालयस्य द्वयोः पार्श्वयोः सागरवज्राभिधे कूटे भवतः। अमीषामष्टकूटानां उदयः पञ्चशतयोजनानि, भूव्यासः पञ्चशतयोजनानि, मध्यविस्तारः पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशतयोजनानि, मुखविष्कम्भः सार्धद्विशतयोजनानि। शिखरे च क्रोशायामाः, अर्धक्रोशविस्तृताः पादोनक्रोशोन्नता नानारत्नमयाः दिग्वधूनां प्रासादा भवन्ति। तेषु प्रासादेषु मेघङ्करा-मेघवती-सुमेघा-मेघमालिनी-तोयन्धराविचित्रापुष्प-मालिन्यनन्दिताख्याः, दिक्कुमार्यो वसन्ति। एवं सर्वकूटदिग्वधूप्रासादा-नन्दनवनवत्सौमनसवने भवन्ति।

(नन्दनवन में) मेरु पर्वत की आग्नेय दिशा में उत्पला, कुमुदा, नलिनी और उत्पलोज्ज्वला नाम की चार वापिकाएँ हैं। नैऋत्य दिशा में भृङ्गा, भृङ्गनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा नाम की चार वापिकाएँ हैं। वायव्य दिशा में श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया नाम की चार वापिकाएँ हैं तथा ऐशान दिशा में नलिनी, नलिनीऊर्मि, कुमुद और कुमुदप्रभा नाम की चार वापिकाएँ हैं। ये सोलह वापिकाएँ मणियों के तोरणों एवं वेदिका आदि से मण्डित, नाना प्रकार के रत्नों की सीढ़ियों से युक्त, पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी और दस योजन गहरी हैं। ये सभी वापिकाएँ चतुष्कोण हैं तथा हंस, सारस और चक्रवाक आदि पक्षियों के शब्दों से अत्यन्त शोभायमान हैं। इन सभी वापियों के मध्य भाग से ६२-१/२ योजन ऊँचे, ३१-१/४ योजन चौड़े, अर्ध (१/२) योजन गहरी नींव से संयुक्त, सिंहासन एवं सभास्थान आदि से अलंकृत रत्नमय भवन हैं। इन आग्नेय और नैऋत्य दिशा सम्बन्धी वापिकाओं में स्थित भवनों में सौधर्म इन्द्र अपने लोकपाल आदि देव और शचि आदि देवाङ्गनाओं के साथ नाना प्रकार की क्रीडा करता है तथा वायव्य और ईशान दिशा स्थित वापिकाओं के भवनों में ऐशान इन्द्र अपने परिवार देवों एवं देवाङ्गनाओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा करता है। जिस प्रकार नन्दनवन में सौधर्मैशान सम्बन्धी वापी एवं प्रासाद आदि का वर्णन किया है उसी प्रकार क्रम से वापी, प्रासाद आदि का सभी वर्णन सौमनसवन में जानना चाहिये क्योंकि नन्दनवन से यहाँ कोई विशेषता नहीं है।

मेरु पर्वत के ऊपर पाण्डुकवन में चूलिका की प्रदक्षिणा रूप से ऐशान आदि विदिशाओं में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची, अर्धचन्द्र की उपमा को धारण करने वाली, रत्नमय तोरण एवं वेदिका आदि से अलंकृत, अपने-

मेरोराग्नेयदिग्भागे उत्पला-कुमुदा-नलिन्युत्पलोज्ज्वलाऽह्वयाश्चतस्त्रो वापिका भवेयुः। नैऋत्यादिशि भृङ्गा-भृङ्गनिभा-कज्जला-कज्जलप्रभाख्याश्चतस्त्रो वाप्यः सन्ति। वायुदिग्भागे श्रीभद्रा श्रीकान्ताश्रीमहिताश्रीनिलयाभिधावापिकाः स्युः। ऐशानीदिशि नलिनी-नलिन्यूर्मि-कुमुदा-कुमुदप्रभासंज्ञाश्चतस्त्रो वाप्यो भवन्ति।

एतामणितोरणवेदिकादि मण्डिता, विचित्ररत्नसोपानाः, पञ्चाशद्योजनायामाः, पञ्चविंशतियोजन विस्तृताः दशयोजनावगाहाः चतुष्कोणाः षोडश वाप्यो हंस-सारस-चक्रवाकादि ध्वानैस्तरां विभान्ति स्म। तासां सर्वासां वापीनां मध्यभागे सार्धद्विषष्टियोजनोत्सेधाः, क्रोशाधिकैकत्रिंशद्योजनायामविस्ताराः, सिंहासनसभास्थानाद्यलंकृताः, द्विक्रोशावगाहा, रत्नमयाः प्रासादाः सन्ति। तेषु आग्नेय-नैऋत्यदिक्स्थित प्रासादेषु सौधर्मेन्द्रः स्वामी लोकपालादि देवशचीभिः समं विविधां क्रीडां करोति। वायव्यैशान दिग्भागस्थ गेहेष्वैशानेन्द्रः पति। देव्यादिभिश्चमुदा क्रीडति। यथात्रनन्दनवनेवापीप्रासादाः सौधर्मैशानेन्द्रयोर्वर्णिता तथोक्तक्रमेणवापीप्रासादाः सर्वेसौमनसवनेऽपि भवन्ति नात्र कश्चिद्विशेषः।

अपने क्षेत्रों के सम्मुख, स्फुरायमान तेजमय पाण्डुक आदि चार दिव्य शिलाएँ हैं। इन चारों शिलाओं में प्रथम पाण्डुक नाम की शिला ऐशान दिशा में है। जो स्वर्ण सदृश वर्ण से युक्त, पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों के जन्म स्नान की पीठिका सदृश है। द्वितीय पाण्डुकम्बला नाम की शिला आग्नेय दिशा में है, जो अर्जुन (चाँदी) सदृश वर्ण से युक्त, दक्षिणोत्तर लम्बी और पश्चिम विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जिनेन्द्रों के जन्माभिषेक की पीठिका सदृश है। तृतीय रक्ता नाम की शिला नैऋत्य दिशा में है, जो तपाए हुए स्वर्ण के सदृश वर्ण से युक्त, ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थङ्करों के जन्माभिषेक से निबद्ध तथा पूर्व-पश्चिम लम्बी है। इसी प्रकार रक्तकम्बला नाम की चतुर्थ शिला वायव्यदिशा में दक्षिण-उत्तर लम्बी, आरक्त वर्ण से युक्त और पूर्व विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्कर देवों के जन्माभिषेक से सम्बद्ध है। इन चारों शिलाओं में से प्रत्येक शिला के ऊपर देदीप्यमान रत्नमय तीन-तीन सिंहासन हैं। उन सिंहासनों में से बीच का सिंहासन पाँच सौ धनुष ऊँचा, भूमि पर पाँच सौ धनुष चौड़ा, अग्रभाग पर दो सौ पचास धनुष चौड़ा तथा जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी अर्थात् तीर्थङ्करों के जन्माभिषेक की स्थिति के लिए है। दक्षिण दिशा में स्थित सिंहासन जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक के समय सौधर्म इन्द्र के बैठने के लिए होते हैं और उत्तर दिशा स्थित सिंहासन तीर्थङ्करों के जन्माभिषेक के समय ऐशानेन्द्र की संस्थिति अर्थात् बैठने के लिए हैं।

पाण्डुकवने चूलिकायाः प्रदक्षिणं ऐशानादि विदिक्षुशतयोजनायामाः पञ्चाशद्योजनविस्तीर्णाः अष्टयोजनोन्नताः अर्धचन्द्रोपमाः रत्नतोरणवेदिकाद्यलंकृताः स्वस्वक्षेत्रसन्मुखाः स्फुरत्तेजोमयाः पाण्डुकशिलाद्याश्चतस्त्रोदिव्याः शिलाः सन्ति। तासामाद्या स्वर्णवर्णा पूर्वापरदीर्घा भरतक्षेत्रोत्पन्नतीर्थकराणां जन्मस्नान पीठिका पाण्डुकशिला भवति। द्वितीया अर्जुनच्छाया दक्षिणोत्तरदीर्घा अपरविदेहजिनेन्द्राणां

पाण्डुक आदि चारों शिलाओं एवं सिंहासन आदि का चित्रण निम्न प्रकार है :-

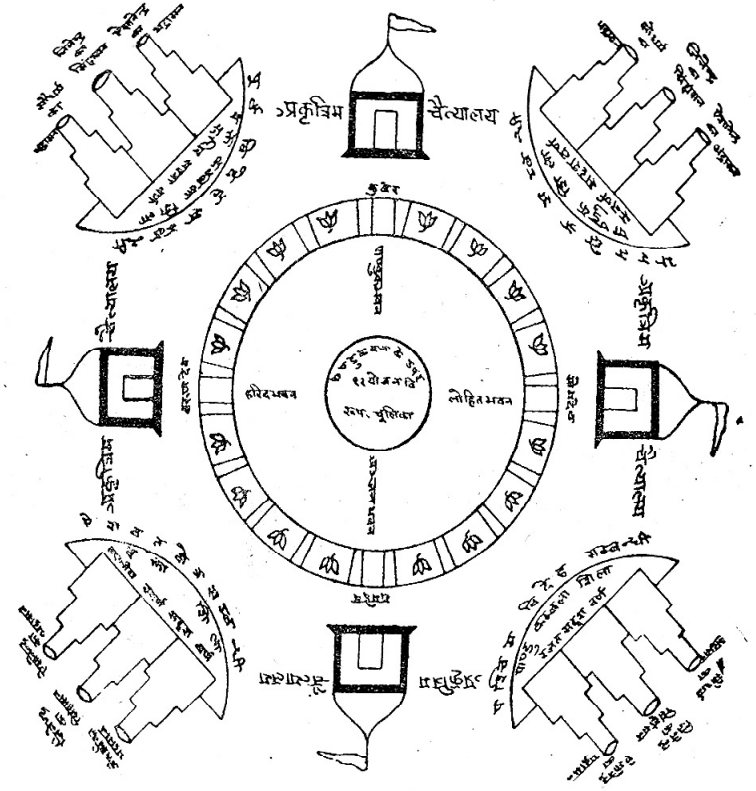

कल्पवासी, ज्योतिष्क, भवनवासी और व्यन्तरवासी देवों के इन्द्र क्रमशः घण्टा, सिंहनाद, शङ्ख एवं उत्तम भेरी के शब्दों तथा आसन आदि कम्पित होने रूप चिह्नों द्वारा

जन्माभिषेक पीठिका पाण्डुकम्बलाख्या आग्नेयदिशि शिलाऽस्ति। तृतीया तपनीयनिभापूर्वापरदीर्घा, ऐरावतवर्षज तीर्थकृज्जन्माभिषेकनिबद्धा रक्ताह्वया नैऋत्यदिग्भागे शिला स्यात्। चतुर्थीपद्मवर्णादक्षिणोत्तरदीर्घा पूर्वविदेहजातश्रीजिनानां जन्मस्नानहेतु भूतावायुदिग्भागे रक्तकम्बलाख्याशिलाविद्यते। आसां चतुः शिलानामुपरिप्रत्येकं स्फुरद्रत्नमयानि त्रीणि सिंहासनानि भवन्ति। तेषां सिंहासनानां मध्यस्थ सिंहासनं पञ्चशतधनुस्तुंगं, पञ्चशतचापभूविस्तृतं सार्ध द्विशतदण्डाग्रव्यासं तीर्थकृतां जन्माभिषेकस्थित्यै स्यात्। दक्षिणदिग्भागस्थितं सिंहासनं जिनाभिषेक समये सौधर्मेन्द्रस्योपवेशनाय भवति। उत्तरदिशास्थहरिविष्टरं तीर्थकृज्जन्माभिषेचनसमये ऐशानेन्द्रस्य संस्थितयेऽस्ति।

जिनेन्द्र भगवान् की उत्पत्ति को जानकर परम विभूति एवं छत्र, ध्वजा आदि से युक्त विमानों द्वारा आकाशरूपी प्रांगण को आच्छादित करते हुए तथा अनेक प्रकार के पटह आदि के शब्दों द्वारा दसों दिशाओं को बहरी करते हुए जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव मनाने के लिए अपूर्व आनन्द एवं धर्मरागरूपीरस से उत्कट अपने-अपने स्थानों से सुमेरु पर्वत की ओर आते हैं। इस जन्माभिषेक के समय इन्द्रों का प्रमुख देव सौधर्मेन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर अपनी तीन परिषदों एवं सात अनीकों से अलंकृत होता हुआ स्वर्ग से मध्यलोक में आता है। इस सौधर्मेन्द्र की प्रथम अभ्यन्तर परिषद में दिव्यरूप और दिव्य मुख वाले, आयुध एवं अलंकारों से अलंकृत बारह लाख देव होते हैं। मध्यम परिषद में चौदह लाख देव और बाह्य परिषद में सोलह लाख देव होते हैं। अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य परिषदों के क्रम से रवि, शशि और यदुप नाम के महत्तर (प्रधान) देव हैं। वृषभ, रथ, तुरंग, गज, नर्तक, गन्धर्व और भृत्य हैं नाम जिनके, ऐसे सात-सात कक्षाओं से युक्त सात अनीक सेनाएँ सौधर्मेन्द्र के आगे जन्माभिषेक के समय में महान् आडम्बर से युक्त होती हुई चलती हैं।

प्रथम कक्षा में शंख एवं कुन्दपुष्प के सदृश धवल चौरासी लाख वृषभ चलते हैं। द्वितीय कक्षा में जपापुष्प के सदृश वर्ण वाले एक करोड़ अड़सठ लाख वृषभ चलते हैं। तृतीय कक्षा में नीलकमल के सदृश वर्ण वाले तीन करोड़ छत्तीस लाख वृषभ हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत (नील) मणि की कान्ति सदृश वर्ण वाले छह करोड़ बहत्तर लाख वृषभ हैं। पंचम कक्षा में स्वर्ण सदृश वर्ण वाले तेरह करोड़ चवालीस लाख वृषभ हैं। षष्ठ कक्षा में अञ्जन सदृश वर्ण वाले छब्बीस करोड़ अट्ठासी लाख वृषभ हैं और सप्तम अनीक में किंशुक (केसु) पुष्प की प्रभा सदृश वर्ण वाले त्रेपन करोड़ छियत्तर लाख

घण्टासिंहनाद शङ्खस्वरभेरीध्वानासन कम्पनादिचिन्हैर्जिनोत्पत्ति विज्ञाय कल्पवासिज्योतिष्क-भवनवासिव्यन्तरवासवाः, परया भूत्या छत्र ध्वजविमानाद्यैर्नभोंगणमाच्छादयन्तः, नाना पटहादि-ध्वानैर्वधिरीकृत दिग्मुखाः, तीर्थकृज्जन्माभिषेकोत्सवाय सानन्दाः धर्मरागरसोत्कटा मेरुंप्रति स्वस्थानादागच्छन्ति। तस्मिन् जन्माभिषेक समये इंद्राणां मुख्यः सामरः ऐरावतगजेन्द्रारूढः त्रिभिः (त्रिसृभिः) परिषद्भिः सप्तानीकैश्चालंकृतः सौधर्मेन्द्रः स्वर्गादत्रायाति। अस्येन्द्रस्य प्रथमायाम्भ्यन्तरायां परिषदिदिव्यरूपाननाः प्रहरणाभरणाद्यलंकृताः, द्वादशलक्षदेवा भवन्ति। मध्यमपरिषदिचतुर्दशलक्षाः सुराः, बाह्यपरिषदि षोडशलक्षनिर्जराः भवेयु। अन्तर्मध्यबाह्यपरिषदां क्रमेण रवि-शशि-यदुपामहत्तरमराः सन्ति। वृषभरथतुरंगगजनृत्यानीकगन्धर्वभृत्यनामानि प्रत्येकं सप्तसप्तकक्षायुतानि, सप्तानीकानि प्रथमदेवराजस्य

वृषभ आगे-आगे चलते हैं। शब्द करते हुए नाना प्रकर के पटह आदि एवं तूर्य आदि से अन्तरित अर्थात् इन सेनाओं के मध्य-मध्य में इन बाजों से युक्त, घण्टा, किंकणी, उत्तम चँवर एवं मणिमय कुसुममालाओं से अलंकृत, रत्नमय कोमल आसन (पलान) से युक्त, देवकुमारों द्वारा चलाए जाने वाले और दिव्य रूप को धारण करने वाले सप्तकक्षाओं से समन्वित समस्त वृषभ अनीकों की संख्या एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख है जो इस जन्माभिषेक महोत्सव में जाती है। जिस प्रकार इन सात वृषभ अनीकों की दूनी-दूनी संख्या का वर्णन किया गया है उसी प्रकार शेष रथ आदि छह अनीकों की संख्या जानना चाहिये।

प्रथम कक्षा में हिम की आभा के सदृश धवल छत्रों से विभूषित धवल रथ चलते हैं। द्वितीय कक्षा में वैडूर्यमणि से निर्मित, चार चाकों से विराजमान और मन्दार पुष्पों के सदृश वर्ण वाले महारथ गमन करते हैं। तृतीय कक्षा में स्वर्णमय छत्र, चामर और ध्वज समूहों से समन्वित तथा तपाये हुए स्वर्ण से निर्मित रथ जाते हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत मणियों से निर्मित बहुत चाकों से उत्पन्न हुए शब्दों से गम्भीर और दूर्वांकुर वर्ण सदृश रथ होते हैं। पञ्चम कक्षा में कर्केतन मणियों से निर्मित बहुत चाकों से उत्पन्न शब्दों से युक्त तथा नीलोत्पल पत्रों के सदृश रथ हैं। षष्ठम कक्षा में पद्मराग मणियों से निर्मित, सुन्दर चाकों को धारण करने वाले तथा कमल के सदृश वर्ण वाले रथ हैं और सप्तम कक्षा में मयूर कण्ठ सदृश वर्ण वाले, मणियों के समूह से उत्पन्न किरणों से देदीप्यमान इन्द्र नीलमणि की प्रभा के सदृश वर्ण वाले महारथ जाते हैं। इन सप्त सेनाओं से समन्वित, बहुत से देव-देवियों से परिपूर्ण, उत्तम चमर, छत्र, ध्वजाएँ एवं पुष्पों की

पुरो महताडम्बरेण जन्माभिषेक समये व्रजन्ति। आद्य कक्षायां शंख कुन्देन्दु धवलाश्चतुरशीतिलक्षाः वृषभाः गच्छन्ति। अष्टषष्टिलक्षैककोटि वृषभाः जपापुष्पाभाश्चद्वितीय कक्षायां यान्तिस्म। तृतीयानीके नीलोत्पल सन्निभाः षट्त्रिंशल्लक्षत्रिकोटि वृषभाश्च। चतुर्थानीके द्विसप्ततिलक्षषट्कोटिवृषभाः वृषभाः मरकतमणिवर्णाश्च। पञ्चम्यां कक्षायां कनकनिभाश्चत्वारिंशल्लक्षत्रयोदशकोटि वृषभाश्च। अष्टषष्टिलक्षैककोटि वृषभाः जपापुष्पाभाश्चात्वारिंशल्लक्षत्रयोदश-कोटिवृषभाश्च। षष्ट्यां अञ्जनाभाः अष्टाशीतिलक्षषड्विंशतिकोटिवृषभाश्च। सप्तमानीके किंशुककुसुमप्रभाः षट्सप्ततिलक्षत्रिपञ्चाशत्कोटिवृषभा व्रजन्ति। ध्वनन्नानापटहादि तूर्यान्तरितः घण्टाकिंकिणीवरचामरमणिकुसुममालाद्यलंकृताः,

---

मालाओं से प्रकाशमान, सब रथ कक्षाओं के मध्य में शब्द करते हुए देव वादित्रों से युक्त और आकाश को आच्छादित करते हुए ऊँचे एवं विस्तृत रथ जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक महोत्सव में इन्द्र के महान् पुण्योदय से आगे-आगे जाते हैं।

अश्वों की प्रथम कक्षा में क्षीरसमुद्र की तरङ्गों के सदृश तथा श्वेत चामरों से अलंकृत धवल अश्व जाते हैं। द्वितीय कक्षा में उदित होते हुए सूर्य के वर्ण सदृश एवं चलते हुए उत्तम चामरों से युक्त (रक्त वर्ण के) तुरङ्ग होते हैं। तृतीय कक्षा में तपाए हुए स्वर्ण के सदृश खुरों से उत्पन्न धूलि से पिञ्जरित अश्व गोरोचन (पीत) वर्ण वाले होते हैं। चतुर्थ कक्षा में मरकत मणि के सदृश वर्ण वाले एवं शीघ्रगामी अश्व चलते हैं। पञ्चम कक्षा में रत्नों के आभूषणों से विभूषित तथा नीलोत्पल पत्र सदृश वर्ण वाले घोड़े चलते हैं। षष्ठम कक्षा में जपापुष्प सदृश (रक्त) वर्ण वाले और सप्तम कक्षा में इन्द्रनीलमणि की प्रभा वाले घोड़े होते हैं। इस प्रकार ये सात कक्षाओं से युक्त, अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित, अपनी-अपनी सेनाओं के आगे उत्पन्न होने वाले वादित्रों के शब्दों से अन्तरित, उत्तम रत्नों के आसनों (पलानों) से युक्त, देवकुमारों द्वारा चलाए जाने वाले दिव्य और उत्तुङ्गकाय घोड़े भगवान् के जन्माभिषेक के महोत्सव में जाते हैं।

प्रथम कक्षा की गज सेना में गोक्षीर (धवल) वर्ण सदृश और पर्वत के समान उन्नत एवं विस्तृत देह वाले चौरासी लाख हाथी होते हैं। द्वितीय कक्षा में सूर्य (बाल सूर्य) के तेज सदृश कान्ति वाले हाथी दुगुने (एक करोड़ अड़सठ लाख) होते हैं। तृतीय कक्षा में दूसरी कक्षा से दुगुने और तपाए हुए स्वर्णाभा सदृश हाथी जाते हैं। चतुर्थ कक्षा में इससे भी दुगुने और तपाए हुए स्वर्ण की कान्ति सदृश हाथी होते हैं। पञ्चम

रत्नमयमृद्वासनाः, देवकुमारैर्वाहिताः षडधिकशतकोट्यष्टषष्टिलक्षप्रमाः, दिव्यरूपाः सप्तकक्षान्विताः सर्वेवृषभास्तस्मिन्महोत्सवे व्रजन्ति।

यथैताः द्विगुणद्विगुणासंख्याः सप्तवृषभानीकानां वर्णिताः तथाशेषरथादिष-डनीकानां समानसंख्याः ज्ञातव्याः।

आद्ये अनीके शशितुषाराभाः धवलातपत्रालंकृताः धवलरथाः गच्छन्ति। द्वितीये वैडूर्यमणिविनिर्मितचतुष्चक्रविराजमाना मन्दारकुसुमनिभा महारथाश्च। तृतीये कनकातपत्रचमरध्वजाङ्किताः, निष्टप्तकाञ्चननिर्मितारथाश्च। चतुर्थेमरकतमणिमय बहुचक्रोत्पन्नशब्दगम्भीराः, दूर्वावर्णारथाश्च। पञ्चमे कर्केतमणिजातबहुचक्रोत्पन्न सत् स्वराः, नीलोत्पलदलाभारथाश्च। षष्ठे पद्मरागमणिघटित चारुचक्रधराः कमलवर्णाः रथाश्च। सप्ते अनीके शिखिकण्ठवर्णमणिगणोत्थकिरणपिञ्जरिताः इन्द्रनीलमणिप्रभाः महारथाः गच्छन्ति। एते सप्त सेनान्विताः, बहुदेवदेवीपूर्णाः, वरचमरछत्रकेतुकुसुम-मालादिभासमानाः, कक्षान्तरान्तर ध्वनन्नानादेवानका नभस्तलमाच्छादयन्त उत्तुङ्गाः पृथुरथा जिनजन्माभिषेकोत्सवे शक्रस्य महतापुण्येन पुरः व्रजन्ति।

कक्षा में चतुर्थ कक्षा से दुगुने और नीलोत्पल आभायुक्त हाथी षष्ठम कक्षा में पञ्चम कक्षा से दुगुने तथा जपापुष्प सदृश हाथी और सप्तम कक्षा में अञ्जनगिरि के सदृश कान्ति वाले त्रेपन करोड़ छियत्तर लाख हाथी जाते हैं। इन सातों कक्षाओं के हाथियों की संख्या का योग एक सौ छह करोड़ अड़सठ लाख है। इन सात सेनाओं से युक्त, उन्नत दाँतरूपी मूसलों से सहित, गुड-गुड गरजने वाले, गलते हुए मद से हैं लिप्त अङ्ग जिनके, लटकते हुए रत्नमय घण्टा, किंकिणी एवं पुष्पमालाओं से सुशोभित, अनेक प्रकार की ध्वजाओं, छत्र, चमर एवं मणि और स्वर्ण की रस्सियों से अलंकृत, प्रत्येक कक्षा के अन्तरालों में बजने वाले वादित्रों के शब्दों से युक्त, उत्तम देव-देवियों की सवारियों से सहित, चलते-फिरते पर्वत के समान उन्नत एवं महादिव्य देह को धारण करने वाले हाथी इन जिनेन्द्र भगवान् के जन्म महोत्सव में सौधर्म इन्द्र के श्रेष्ठ पुण्य के फल को लोगों को दिखाते हुए ही मानो स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते हैं।

नर्तक अनीक देव प्रथम कक्षा में विद्याधर, कामदेव, राजा और अधिराजाओं के चरित्रों द्वारा अभिनय करते हुए नर्तकी देव जाते हैं। द्वितीय कक्षा के नर्तक देव समस्त अर्धमण्डलीक एवं महामंडलीकों के उत्तम चरित्र का अभिनय करते हैं। तृतीय कक्षा के नर्तक देव बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेवों (प्रतिनारायणों) के वीर्यादि गुणों से सम्बद्ध चारित्र द्वारा महानर्तन करते हुए जाते हैं। चतुर्थ कक्षा के नर्तक देव चक्रवर्तियों की विभूति एवं वीर्यादि गुणों से निबद्ध चारित्र के द्वारा महाअभिनय करते हुए जाते हैं।

प्रथमायां अश्वसेनायां क्षीराब्धितरङ्गनिभाः, सितचामरालंकृता धवलाश्वा गच्छन्ति। द्वितीयायां उदयभानुसन्निभाश्चलद्धरचामरास्तुरङ्गाश्च। तृतीयायां निष्टप्तकनकसमखुरोत्थरेणु पिञ्जरिता गोरोचनवर्णा अश्वाश्च। चतुर्थ्यां मरकतमणिवर्णाः शीघ्रगामिनोऽश्वा गच्छन्ति। पंचम्यां रत्नाभरणभूषिता, नीलोत्पलपत्राभाहयाश्च। षष्ठ्यां जपापुष्पवर्णा अश्वाश्च। सप्तम्यां सेनायां इन्द्रनीलप्रभाघोटका यान्ति। एते सप्तसेनान्विताः, नानाभरणभूषिताः, स्वस्वसेनाऽग्रोत्थ-वाद्यरवान्तरिता, वररत्नासना, देवकुमारैर्वाहिता, दिव्योन्नतकाया, अश्वास्तज्जन्मा-भिषेकोत्सवे गच्छन्ति।

चतुरशीतिलक्षप्रमा गोक्षीरवर्णा आदिमे गजसैन्येपर्वतसमोन्नत पृथुदेहा गजाः व्रजन्ति। द्वितीये भानुतेजसस्तद्द्विगुणा दन्तिनश्च। तृतीये तेभ्यो द्विगुणा निष्टप्तकनकाभागजाश्च। चतुर्थे सर्षपकुसुमवर्णास्तद्द्विगुणा वारणाश्च।

पंचमेतेभ्यो द्विगुणा नीलोत्पलाभा-गजाश्च। षष्ठे तद् द्विगुणा जपापुष्पप्रभा दन्तिनश्च सप्तमे सैन्ये षट्सप्ततिलक्षत्रिपंचाशत्कोटिगणना, अंजनाद्रिसमतेजसो

पञ्चम कक्षा के नर्तक देव चरमशरीरी यतिगण, लोकपाल और इन्द्रों के गुणों से रचित उनके चरित्र द्वारा अभिनय करते हैं। षष्ठम कक्षा के नर्तक देव विशुद्ध ऋद्धियों एवं ज्ञान आदि गुणों से उत्पन्न उत्तम चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस से उत्कट होते हुए श्रेष्ठ नृत्य करते हुए जाते हैं और सप्तम कक्षा के नर्तक देव चौंतीस अतिशय, अष्ट प्रातिहार्य और अनन्तज्ञान आदि गुणों से सम्बद्ध चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस में डूबे हुए तथा सर्वोत्कृष्ट नर्तन करते हुए जाते हैं। ये सात अनीकों के आश्रित, उत्तम नृत्य करने में चतुर, आनन्द से युक्त, दिव्य वस्त्र और दिव्य अलङ्कारों से विभूषित तथा महाविक्रियारूप नृत्य करते हुए मेरु पर्वत की ओर जाते हैं।

संगीत के सात स्वरों द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के और गणधरादि देवों के गुणों से सम्बद्ध अनेक प्रकार के मनोहर गीत गाते हुए, दिव्य कण्ठ, दिव्य वस्त्र एवं आभरणों से मण्डित गन्धर्व देव जिनेन्द्र के जन्माभिषेक महोत्सव में सात अनीकों से समन्वित होते हुए जाते हैं। प्रथम कक्ष में षड्ज स्वरों से जिनेन्द्र के गुण गाते हैं। द्वितीय कक्ष में ऋषभ स्वर से गुणगान करते हैं। तृतीय कक्ष में गान्धार स्वर से गाते हुए जाते हैं। चतुर्थ कक्ष में मध्यम स्वर से जिनाभिषेक सम्बन्धी गीतों को गाते हैं। पञ्चम कक्ष में पञ्चम स्वर से गान करते हैं। षष्ठम कक्ष में धैवत स्वर से गाते हैं और सप्तम कक्ष में निषात स्वर से युक्त गान करते हुए गन्धर्व देव जाते हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी देवियों से

हस्तिनोव्रजन्ति। एते सर्वे एकत्रीकृताः षडग्रशतकोट्यष्टषष्टि लक्षसंख्याना: सप्तसेनान्विता उत्तुङ्गदन्तमुसला, गुडुगुडुगर्जन्तो गलन्मदलिप्तांगाः, प्रलम्बित रत्नघण्टाकिंकिणीकुसु-मदामशोभिता, नानापताकाछत्रचमरमणिकनकरज्ज्वाद्यलंकृताः अंतरान्तरध्वनद्देवानका, वरदेवदेव्यारोहिताश्चलद्गिरिसमोन्नतमहादिव्यदेहा गजेन्द्रास्तस्मिन् जिनजन्मोत्सवे सौधर्मेंद्रस्य प्रवरं पुण्यफलं लोकानां दर्शयन्त इव स्वर्गान्मेरुं प्रत्यागच्छन्ति।

प्रथमे नर्तकानीके विद्याधर कामदेव राजाधिराजानां चरित्रेणनटन्तोऽमरा गच्छन्ति। द्वितीये सकलार्ध महामण्डलीकानां वरचरित्रेण नर्तनं कुर्वन्तः सुराश्च। तृतीये बलभद्रवासुदेवप्रतिवासुदेवानां वीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण नृत्यन्तो देवा गच्छन्ति। चतुर्थे चक्रवर्तिनां विभूति वीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण महानर्तनं भजन्तोऽमराश्च। पञ्चमे चरमांगयतिलोकपाल सुरेन्द्राणां गुणरचितचरित्रेण नटन्तो निर्जराश्च। षष्ठे गणधरदेवानां

संयुक्त, सप्त अनीकों के आश्रित, किन्नर और किन्नरियों के साथ वीणा, मृदङ्ग, झल्लरी और ताल आदि के द्वारा जिनाभिषेक महोत्सव के गुणसमूह से रचित, बहुत मधुर, शुभ और मन को हरण करने वाले गीत गाते हुए, धर्मराग रूपी रस से उद्धत होते हुए गन्धर्व देव उस महामहोत्सव में जाते हैं।

सात प्रकार की सेनाओं से युक्त, दिव्य आभूषणों से अलंकृत, अनेक वर्णों की ध्वजाएँ एवं छत्रों से सहित हैं हाथ जिनके, ऐसे भृत्यदेव जाते हैं। प्रथम कक्ष में अञ्जन सदृश प्रभा वाली ध्वजाएँ हाथ में लेकर भृत्यदेव जाते हैं। द्वितीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में मणि एवं स्वर्णदण्ड के शिखर पर स्थित चलते (ढुलते) हुए चामरों से संयुक्त नीली ध्वजाएँ लेकर चलते हैं। तृतीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में वैडूर्य मणिमय दण्डों के अग्रभाग पर स्थित धवल ध्वजाएँ लेकर चलते हैं। चतुर्थ कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में हाथी, सिंह, वृषभ, दर्पण, मयूर, सारस, गरुड़, चक्र, रवि एवं चन्द्राकार कनक (पीली) ध्वजाओं के आश्रयभूत मरकत मणिमय दण्ड लेकर चलते हैं। पञ्चम कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में विकसित कमल की कान्ति वाली पद्मध्वजाओं से आरोपित विद्रुम मणि (मूँगे) के ऊँचे-ऊँचे दण्ड लेकर चलते हैं। षष्ठम कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथों में गोक्षीर वर्ण सदृश धवल ध्वजाओं से युक्त स्वर्णदण्ड लेकर तथा सप्तम कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथों में देदीप्यमान मणिसमूह से रचित दण्ड के अग्रभाग पर स्थित, मोतियों की मालाओं से अलंकृत धवल छत्रों को लेकर जाते हैं। इस प्रकार सात अनीकों से युक्त, जिनभक्ति में तत्पर भृत्यदेव उत्साह और अपूर्व उद्यम-पूर्वक उस महोत्सव में जाते हैं। इन भृत्यदेवों की सात अनीक कक्षाओं में से छह कक्षा

ऋद्धिज्ञानादि गुणोत्पन्नवरचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटाः परं नृत्यं कुर्वाणाः सुराः यान्ति। सप्तमे नर्त्तकानीके तीर्थकराणां चतुस्त्रिांशदतिशयाष्ट-प्रातिहार्यानन्तज्ञानादिगुण रचितचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटा नाकिनः प्रवरं नर्त्तनं प्रकुर्वन्तो गच्छन्ति। अमी सप्तानीकाश्रिता महानृत्यविशारदाः, सानन्दा, दिव्यवस्त्राभरणभूषिता, महारूपा नटन्तो नर्त्तका मराः मेरुं प्रत्युत्पतन्ति।

अमीभिः सप्तस्वरै र्जिनेन्द्रगणधरादि गुणनिबद्धानि नानामनोहरगीतानि गायन्तौ दिव्यकण्ठा वस्त्राभरणमण्डिता गन्धर्वामरास्तस्मिन् जिनजन्ममहोत्सवे सप्तानीकान्विता गच्छन्ति। आद्ये अनीके षड्ज स्वरेण जिनेन्द्रगुणान् गायन्तः, द्वितीये ऋषभस्वरेण च गानं कुर्वन्तस्तृतीये गान्धारनादेन गायन्तो गन्धर्वा गच्छन्ति। चतुर्थे मध्यमध्वनिना जन्माभिषेकसम्बन्धिगीतान् गायन्तः। पञ्चमे पञ्चमस्वरेण गानं कुर्वाणाः। षष्ठे

के भृत्यदेव मात्र ध्वजाएँ लेकर चलते हैं जिनका सर्वयोग बावन करोड़ बान्नवे लाख (५२,९२०००००) प्रमाण है, जो इस जन्ममहोत्सव में चलती हुई पवन के वश से हिलने वाली दिव्य ध्वजाओं से अत्यन्त शोभायमान होते हैं। सप्तम कक्षा के भृत्य श्वेत छत्र लेकर चलते हैं, जिनका प्रमाण त्रेपन करोड़ छियत्तर लाख (५३,७६००००००) है। इस प्रकार वृषभ से भृत्यदेव पर्यन्त (४९) उनंचास अनीक कक्षाओं का एकत्र योग करने पर सात सौ छत्तीस करोड़ छियत्तर लाख प्रमाण है। यथा :—

सात अनीक सम्बन्धी ४९ कक्षाओं का एकत्रित प्रमाण

कक्षा	वृषभ	रथ	घोड़े	हाथी	नर्तक	गन्धर्व	भृत्यवर्ग
१	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००
२	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००
३	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००
४	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००
५	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००
६	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००
७	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००
योग	१०६६८०००००+	१०६६८०००००+	१०६६८०००००+	१०६६८०००००+	१०६६८०००००+	१०६६८०००००१०+	६६८०००००

= ७४६७६००००० कुल प्रमाण हुआ।

सौधर्मेन्द्र जिस प्रकार सात अनीकों के ७४६ करोड़ ७६ लाख सेना के साथ यहाँ जिनेन्द्र के जन्ममहोत्सव में आता है, उसी प्रकार समस्त इन्द्रों में से प्रत्येक इन्द्र की सेना का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवों की सेना से दूना-दूना होता है, जिसे लेकर वे सब आते हैं। इस तरह उपर्युक्त समस्त सेना और तीनों पारिषद देवों से वेष्टित सौधर्म इन्द्र शचि के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़कर महामहोत्सव के साथ स्वर्ग से जिनेन्द्र के

धैवतध्वानेन च गायन्तः, सप्तमे निषादघोषेणकलं गीतगानं कुर्वन्तो गन्धर्वा व्रजन्ति। एते स्वस्वदेवीयुताः सप्तानीकाश्रिताः किन्नरैः किन्नरीभिश्च सार्धं वीणामृदङ्गझल्ल रीतालादिभिर्जिनजन्माभिषेकोत्सवेगुणगणैः रचितानि, बहुमधुरशुभमनोहरगीतानि गायन्तो धर्मरागरसोत्कटा गन्धर्वसुरास्तन्महोत्सवे व्रजन्ति।

ततः सप्तसेनान्विता दिव्याभरणलंकृता अनेकवर्णध्वजछत्रारोपितकरा देवभृत्या गच्छन्ति। प्रथमायां सेनायां अञ्जनप्रभा ध्वजकराङ्किता भृत्यामरा यान्ति। द्वितीयायां मणिकाञ्चनदण्डशिखर-स्थचलच्चमरान्वितनीलध्वजारोपितपाणयो भृत्याश्च। तृतीयायां वैडूर्यदण्डाग्रस्थधवलकेतुकृतकरा देवाश्च। चतुर्थ्यां करिसिंहवृषभदर्पण शिखिसारस गरुडचक्रविरूपाकार कनकध्वजाश्रितमरकतमणिदण्डगृहीतहस्ताः भृत्यसुरा व्रजन्ति। पञ्चम्यां विकसित कमलाभपद्मध्वजारोपितविद्रुममणिमयतुंगदण्डाङ्कितकराश्च। षष्ठ्यांगोक्षीरवर्णश्वेतपताकाश्रितकनकदण्डयुक्तकराश्च, स्फुरन्मणिगणनिबद्धदण्डा-

---

जन्मकल्याणक की निष्पत्ति के समय निकलता है। अनेक आयुधों से अलंकृत अङ्गरक्षक देव इन्द्र को वेष्टित किए हुए निकलते हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक देव, त्रायस्त्रिंश देव एवं लोकपाल आदि अवशेष देव इन्द्र के साथ स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते हैं।

अब इन्द्र के ऐरावत हाथी का संक्षिप्त वर्णन करते हैं :—

आभियोग्य देवों का अधिपति नागदत्त नामक वाहन जाति का देव जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन प्रमाण गोल देह की विक्रिया करके इन्द्र का ऐरावत हाथी बनता है। जो शङ्ख, चन्द्र और कुन्दपुष्प के समान धवल अलङ्कारों, घण्टा, किंकणी, तारिकाओं (धवल बिन्दुओं) एवं स्वर्ण कक्षा अर्थात् हाथी के पेट पर बाँधने की रस्सी आदि से विभूषित, अत्यन्त सुन्दर, विक्रियारूप को धारण करने वाला तथा महा उन्नत होता है। उस हाथी के अनेक वर्णों से युक्त रमणीक बत्तीस मुख होते हैं। एक-एक मुख में कोमल, मोटे और लम्बे आठ-आठ दाँत होते हैं। (३२ मुख × ८ = २५६ दाँत हुए)। एक-एक दाँत पर उठती हुई कल्लोलों से रमणीक एक-एक सरोवर होता है। (२५६ सरोवर हुए)। एक-एक सरोवर में एक-एक कमलिनी होती है। एक-एक कमलिनी पर एक-एक दिशा में मणियों की वेदिकाओं से अलंकृत एक-एक तोरण होता है, प्रत्येक कमलिनी के साथ प्रफुल्लित रहने वाले बत्तीस-बत्तीस कमल होते हैं (२५६ × ३२ = ८१९२) कमल होंगे)। एक-एक कमल में एक-एक योजन पर्यन्त सुगन्ध फैलाने वाले बत्तीस-बत्तीस पत्र होते हैं-(८१९२ कमल × ३२ = २६२१४४ पत्र हुए)। एक-एक पत्र पर दिव्य रूप को धारण करने वाले अतिमनोज्ञ बत्तीस नाटक (नाट्यशाला) होते हैं (२६२१४४ × ३२ = ८३८८६०८) और एक-एक नाट्यशालाओं

ग्रस्थैर्मुक्तादामालंकृतछत्रनिवहैर्धवलवर्णैर्यु तपाणयो भृत्यामराः सप्तम्यां सेनायां गच्छन्ति। एते सप्तानोकाङ्किता, जिनभक्तिपरायणा भृत्यामराः सोद्यमास्तन्महोत्सवे प्रयान्ति। अमी षट्सैन्यानां पिण्डीकृताः सर्वे द्विनवति लक्षद्विपञ्चाशत्कोटिप्रमाणास्तस्मिन् महोत्सवे गच्छन्तो मरुद्वशात् (द्) दिव्याध्वजास्तरांराजन्ते। षट्सप्ततिलक्षत्रिपंचाशत् कोटिप्रमाः श्वेछत्राश्च। एते सर्वे वृषभादिभृत्यदेवांता एकोनपंचाशदनीकानामेकत्रीकृताः सप्तशतषट् चत्वारिंशत्कोटिषट्सप्ततिलक्षा भवन्ति।

यथैताः सप्तविधाः सेनाः सौधर्मेन्द्रस्यात्र जिनजन्ममहोत्सवे आगच्छन्ति। तथा सर्वेन्द्राणां प्रत्येकं सप्तसेनाः स्व स्व सामानिकाद्द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति च आयान्ति। इत्युक्त सेनात्रिपरिषदावृतः सौधर्मेन्द्र ऐरावत गजेन्द्रं शच्यासममारूह्य महामहोत्सवेन स्वर्गान् जिनजन्मकल्याण निष्पत्यै निर्गच्छति। अंगरक्षाः नानायुधालंकृताः सुरेशं परितः निर्यान्ति। प्रतीन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिंशल्लोकपालाद्याः शेषामरा इन्द्रेण सह दिवो मेरुं प्रत्यागच्छन्ति।

अथेन्द्रस्यैरावतदन्तिनः किञ्चिद् वर्णनं करोमिः —

जम्बूद्वीपप्रमाणाङ्गं, वृत्ताकारं शंखेन्दु कुन्दधवलं नानाभरणघण्टाकिंकिणी तारिकाहेमकक्षादि भूषितं कामगं कामरूपधारिणं महोन्नतं ऐरावतगजेन्द्रं नागदत्ताख्याभियोग्येशो वाहनामरो विकरोति। तस्यदन्तिनः बहुवर्णा, विचित्रतानि रम्याणि द्वात्रिंशद्वदनानि एकैकस्मिन् वदने मृदुस्थूलायता अष्टौदन्ताः स्युः। एकैकस्मिन् दन्ते एकैकं चलत्कल्लोलरम्यं सरोवरं स्यात् । एकैकस्मिन्सरसि एकैका कमलिनी

में दिव्यरूप को धारण करने वाली बत्तीस-बत्तीस अप्सराएँ नृत्य करती हैं (८३८८६०८ × ३२ = २६८४३५४५६) अप्सराएँ)। जो अनेक प्रकार की विक्रिया धारण करके मृदङ्ग आदि वादित्रों द्वारा, नाना प्रकार के चरणविन्यास द्वारा, हाथरूपी पल्लवों द्वारा और कटितट आदि की लय के द्वारा आनन्दपूर्वक नृत्य करती हैं। ये समस्त सत्ताईस करोड़ अप्सराएँ, आठ महादेवियाँ और एक लाख वल्लभिकाएँ उस ऐरावत हाथी की पीठ पर चढ़कर उस जन्ममहोत्सव में जाते हैं।

विशेषार्थ :— विक्रिया धारण करने वाले ऐरावत हाथी के ३२ मुख और प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत इत्यादि उपर्युक्त क्रम से मानने पर अप्सराओं की कुल संख्या छब्बीस करोड़ चौरासी लाख पैंतीस हजार चार सौ छप्पन (२६८४३५४५६) होती है किन्तु आचार्य इनकी संख्या सत्ताईस करोड़ लिख रहे हैं तथा अन्य आचार्यों के मतानुसार भी अप्सराओं की संख्या २७ करोड़ ही है। यथा :—

भवति। एकैकस्याः कमलिन्या एकैकस्मिन् दिग्भागे मणिवेदिकाङ्कितं एकैकं तोरणं भवेत्। प्रफुल्लद्वात्रिंशत्कमलानि च सन्ति। एकैकस्मिन् कमले एकैकयोजन सुगन्धायतानि द्वात्रिंशन्मनोहर पत्राणि स्युः। एकैकस्मिन् पत्रे दिव्यरूपाः सरसा द्वात्रिंशन्नटिकाः स्युः। एकस्मिन्नेकस्मिन् प्रत्येकं नाटके दिव्यरूपा द्वात्रिंशत्सुरनर्त्तक्यो नानारूपाणि विकृत्य मृदङ्गादि तूर्यैर्नानाचरणविन्यासैः करपल्लवैः कटीतटादिलयैः सानन्दा नृत्यन्ति। सर्वाः सप्तविंशतिकोटिप्रमाः अप्सरसोऽष्टौमहादेव्यो लक्षवल्लभिकाश्च तद् गजेन्द्रपृष्ठमारुह्य तस्मिन् जन्मोत्सवे गच्छन्ति।

ऐरावतो हि शक्रस्य कीदृशो भवति प्रभो।
लक्ष्योजनप्रोत्तुङ्गो विस्तरोपि तथा भवेत्।।१।।
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य दन्ता अष्टौ मुखं प्रति।
दन्तं प्रतिसरश्चैकं नलिन्यैकासरंप्रति।।२।।
द्वात्रिंशत्कमलान्येव चैकैकां पद्मिनीं प्रति।
द्वात्रिंशदस्य पत्राणि प्रतिपद्मं विराजते।।३।।

इस ऐरावत हाथी के सौ मुख होते हैं। प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत (१००×८=८००) होते हैं। प्रत्येक दाँत पर जल से भरे हुए सरोवर (८००) होते हैं। प्रत्येक सरोवरों में पच्चीस-पच्चीस नलिनी (८०० × २५ = २०००) होती हैं। प्रत्येक नलिनी पर एक सौ पच्चीस कमल (२०००० × १२५ = २५०००००) होते हैं। प्रत्येक कमल में एक सौ आठ, एक सौ आठ पत्र (२५००००० × १०८ = २७०००००००) होते हैं और प्रत्येक पत्र पर एक-एक अप्सरा नृत्य करती है अतः कुल अप्सराओं की संख्या सत्ताईस करोड़ हैं।

नोट—पृष्ठ २१५ श्लोक ५-७ के अनुसार :—४ मुख × २ दन्त = ८ दन्त, प्रत्येक दाँत पर १०० सरोवर, ८ × १०० = ८०० सरोवर, प्रत्येक सरोवर में २५ नलिनी, ८०० × २५ = २०००० नलिनी, प्रत्येक नलिनी पर १२५ कमल, २०००० × १२५ = २५००००० कमल, प्रत्येक कमल पर १०८ पत्र २५००००० × १०८ = २७०००००००० पत्र, प्रत्येक पत्र पर एक-एक अप्सरा अर्थात् कुल अप्सराएँ २७ करोड़ हैं।

अब ऐशान आदि अन्य इन्द्रों और अहमिन्द्रों आदि की स्थिति कहते हैं :—

अर्थ :—जिस प्रकार दक्षिणेन्द्र के सात अनीकों की संख्या का वर्णन किया है उसी प्रकार की संख्या आदि उत्तरेन्द्र के भी होती है। ऐशान इन्द्र भी दिव्य अश्वों पर चढ़कर अपने परिवार से अलंकृत होता हुआ, महाविभूति के साथ जन्माभिषेक में आता

प्रतिपत्रं च द्वात्रिंशन्नृत्यंत्यप्सरसो वराः।
केषाञ्चित्संयतानां तु श्रूयतां भो ! मतान्तरं।।४।।
चतुर्मुखो गजो ज्ञेयो दन्तयुग्मं मुखं प्रति।
सरसीनां शतं ज्ञेयं प्रतिदन्तं जलैर्भृतम् ।।५।।
सरः प्रतिनलिनीनां पञ्च विंशतिकं ततः।
नलिनीं प्रतिपद्मानां पञ्चविंशत्यधिकं शतं।।६।।
नर्तकीनां प्रतिपद्मष्टोत्तरशतं परं।
एवं वैभवसंयुक्तं गजं शक्रः स्थितोमुदा।।७।।

यादृशी दक्षिणेन्द्रस्य सप्तानीकानां संख्यावर्णिता तादृशी संख्योत्तरेन्द्रस्य स्यात्। ईशानेन्द्रोऽपि दिव्यं तुरङ्गमारुह्यस्वपरिवारालंकृतो महाविभूत्यात्रागच्छति। शेषा सनत्कुमारेन्द्राद्या अच्युतेन्द्रपर्यन्ता देवेन्द्राः सप्तानीकत्रिपरिषद्वेष्टिताः स्वस्ववाहनविभूत्याश्रिताः सामराः सकलत्रास्तदायान्ति। भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष्क देवेशाः सप्तानीक त्रिपरिषदावृताः स्वस्ववाहनं विमानाद्यारूढा महाविभूत्या स्वदेवदेवीभिः सहात्रागच्छन्ति सर्वे अहमिन्द्रा आसनकम्पेन तज्जन्मोत्सवं विज्ञाय सप्तपदान् गत्वा

है। शेष सनत्कुमार इन्द्र आदि को लेकर अच्युत इन्द्र पर्यन्त के सभी देवेन्द्र सात अनीकों एवं तीन पारिषदों से वेष्टित, अपने-अपने वाहनरूपी विभूति का आश्रय लेकर समस्त देवों के साथ यहाँ आते हैं। भवनवासी, व्यंतरवासी और ज्योतिष्क देवों के इन्द्र भी सात अनीकों एवं तीन पारिषदों से वेष्टित होते हुए, अपने-अपने वाहन एवं विमान आदि पर चढ़कर महाविभूति से युक्त होते हुए अपनी-अपनी देवियों के साथ यहाँ आते हैं। समस्त अहमिन्द्र आसन कम्पायमान होने से जिनेन्द्र के जन्म उत्सव को जानकर और सात पैर आगे जाकर मस्तक से अपने स्थान पर स्थित होकर ही जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार करते हैं। इस प्रकार परम विभूति से युक्त होते हुए चतुर्निकाय के इन्द्र अपने समस्त देवों के साथ नाना प्रकार के देववादित्रों के शब्दों द्वारा दिशाओं को बहरी करते हुए तथा ध्वजा, छत्र, चामर और विमान आदि के साथ आकाशतल को व्याप्त करते हुए स्वर्ग से उस नगर में आते हैं, जहाँ तीर्थङ्कर की उत्पत्ति होती है।

अब बालतीर्थङ्कर के जन्माभिषेक आदि की समस्त प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन करते हैं :—

अर्थ :—प्रभु के जन्म नगर में आकर इन्द्राणी प्रसूतिगृह में प्रवेश करके माता के समीप जाकर सर्वप्रथम बाल तीर्थङ्कर को प्रणाम करती है और उसी समय माता के समीप मायामयी बालक रखकर भगवान को उठाकर तथा गूढ़वृत्ति से लाकर सौधर्म

भक्त्या मूर्ध्ना स्थानस्था एव जिनेन्द्रं प्रणमन्ति। इत्यादि परया विभूत्या चतुर्णिकायसुरेन्द्राः सामराः सकलत्राः नानादेवानकध्वनिर्बाधिरीकृतदिग्मुखाः, ध्वजछत्रचामर विमानादिभिर्नभोङ्गणं छादयन्तः स्वर्गातीर्थेशोत्पत्तिपुरमागच्छन्ति।

तत्रेन्द्राणी प्रसवागारं प्रविश्य मातुरन्ते परं मायाशिशुं निधाय तीर्थेशं प्रणम्यादाय गूढवृत्त्यानीय सौधर्मेन्द्रस्य करे ददाति। सोपितं तीर्थङ्करं मुदाप्रणम्यस्तुत्वामहोत्सवेन मेरुमानीयपरीत्य पाण्डुकशिलास्थ मध्यसिंहासने धत्ते। ततः क्षीराब्धेः क्षीराम्बुभृतैः अष्टयोजनगम्भीरैर्योजनैकमुखविस्तृतैर्मुक्तादामाम्भोजचन्दनाद्यलंकृतैरष्टोत्तरसहस्रैः कनत्काञ्चनकलशैर्गीतनृत्यभ्रूपोत्क्षेपादि (भ्रूत्क्षेपादि) महोत्सवशतैः, परया भक्त्या विभूत्या च नाकेन्द्राः सम्भूय जिनेन्द्रं स्नपयन्ति। यदि चेत्ता महत्योजलधारा यस्याद्रेरुपरि पतन्ति सोऽद्रिस्तत्क्षणं शतखण्डतां याति। अप्रमाणमहावीर्यः परमेश्वरस्तद्धारापतनं जलविन्दुवन्मन्यते। इतिध्वनद्वाद्यशतैर्जयजयादि निर्घोषैः शुद्धाम्बुस्नपनं सम्पूर्ण विधायान्ते सुगन्धिद्रव्यमिश्रितैः गन्धोदक कुम्भैर्गन्धोदकस्नपनं शक्रा अस्य कुर्वन्ति। ततस्तद्गन्धो-

---

इन्द्र के हाथों में दे देती है। वह इन्द्र भी उन तीर्थङ्कर प्रभु को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करके एवं स्तुति करके महामहोत्सव के साथ मेरु पर्वत पर लाकर और मेरु की तीन प्रदक्षिणा देकर पाण्डुकशिला पर स्थित मध्य के सिंहासन पर प्रभु को विराजमान कर देता है। इसके बाद क्षीरसागर के क्षीर सदृश जल से भरे हुए आठ योजन (६४ मील) गहरे, एक योजन (८ मील) मुख विस्तार वाले, मोतियों की माला, कमल एवं चन्दन आदि से अलंकृत, अत्यन्त शोभायमान स्वर्ण के एक हजार आठ कलशों के द्वारा गीत, नृत्य एवं भ्रू उपक्षेपण (भ्रू उत्क्षेपण) आदि सैकड़ों महाउत्सवों के साथ उत्कृष्ट भक्ति एवं परम विभूति से सभी इन्द्र एकत्रित होकर जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते हैं। भगवान् के ऊपर गिरने वाली वह महान् जल की धारा यदि कहीं उस पर्वत के ऊपर गिर जाय तो उस पर्वत के उसी क्षण सौ खण्ड हो जांय किन्तु अपरिमित महावीर्य को धारण करने वाले बाल जिनेन्द्र उन धाराओं के पतन को जलबिन्दु के समान मानते हैं। इस प्रकार शब्द करते हुए सैकड़ों वादित्रों और जय-जय आदि शब्दों के द्वारा शुद्ध जल का अभिषेक समाप्त करके अन्त में इन्द्र सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित, सुगन्धित जल से भरे हुए घड़ों के द्वारा सुगन्धित जल से अभिषेक करता है। पश्चात् उस गन्धोदक की अभिवन्दना करके महापूजा के लिए स्वर्ग से लाए हुए दिव्य गन्ध आदि द्रव्यों के द्वारा बाल जिनेन्द्र की पूजा करके इन्द्र अपनी इन्द्राणी एवं अन्य देवों के साथ उत्साहपूर्वक प्रणाम करते हैं। इसके बाद शची अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से, दिव्य वस्त्रों से

दकमभिवन्द्य दिव्यगन्धादिभिः स्वर्गोपनीतैर्महापूजाद्रव्यैर्जिनं प्रपूज्योत्तमांगेनदेवेन्द्रा इन्द्राणीदेवादिभिः सहोच्चैः प्रणमन्ति। पुनः शची नानासुगन्धद्रव्यदिव्यांशुक शाश्वत मणिनेपथ्यैस्तीर्थेशस्य महत्मण्डनं करोति, तदा सौधर्मेन्द्रो जगद्गुरोर्महारूप सम्पदोवीक्ष्य तृप्तिगप्राप्य पुनर्वीक्षितुं सहस्त्रनयनानि विदधाति। ततः परमानन्देन परमेश्वरं स्तुतिशतैः स्तुत्वा तत्पुरं नीत्वा पित्रोः समर्प्य तत्रानन्दनाटकं कृत्वा परं पुण्यमुपार्ज्य चतुर्णिकाय देवेशाः स्वस्वस्थानं गच्छन्ति।

और मणियों के आभूषणों से तीर्थेश का महान् शृङ्गार करती है। उस समय सौधर्म इन्द्र जगद्गुरु की महारूपस्वरूप सम्पदा को देखकर तृप्त नहीं होता और पुनः-पुनः देखने के लिए एक हजार नेत्र बनाता है। ततः उत्कृष्ट आनन्द से युक्त होता हुआ भगवान् की सैकड़ों स्तुतियाँ करता है अर्थात् सहस्त्रों प्रकार से भगवान् की स्तुति करता है। इसके बाद नगर में लाकर पिता को सौंप देता है, पश्चात् पितृगृह के प्राङ्गण में आनन्द नाम का नाटक करके तथा उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करके इन्द्र एवं चतुर्निकाय के देव अपने-अपने स्थानों को वापिस चले जाते हैं।

त्रयोदशं पर्व

(आदिपुराण से[१])

अथातो नवमासानामत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभिर्यथास्वं परिवारिता।।१।।
प्राचीव बन्धुमब्जानां सा लेभे भास्वरं सुतम्।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे नवम्यामुदये रवेः।।२।।
विश्वे ब्रह्ममहायोगे जगतामेकवल्लभम् ।
भासमानं त्रिभिर्बोधैः शिशुमप्यशिशुं गुणैः।।३।।
त्रिबोधकिरणोद्भासिबालार्कोऽसौ स्फुरद्द्युतिः।
नाभिराजोदयादिन्द्रादुदितो विबभौ विभुः।।४।।
दिशः प्रसत्तिमासेदु रासीन्निर्मलमम्बरम्।
गुणानामस्य वैमल्यमनुकर्त्तुमिव प्रभोः।।५।।
प्रजानां ववृधे हर्षः सुरा विस्मयमाश्रयन् ।
अम्लानिकुसुमान्युच्चैर्मुमुचुः सुरभूरुहाः।।६।।

अथानन्तर, ऊपर कही हुई श्री, ह्री आदि देवियाँ जिसकी सेवा करने के लिए सदा समीप में विद्यमान रहती हैं ऐसी माता मरुदेवी ने नव महीने व्यतीत होने पर भगवान् वृषभदेव को उत्पन्न किया।।१।।

जिस प्रकार प्रातःकाल के समय पूर्व दिशा कमलों को विकसित करने वाले प्रकाशमान सूर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार उन मरुदेवी ने भी चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों से शोभायमान, बालक होने पर भी गुणों से वृद्ध तथा तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी देदीप्यमान पुत्र को प्राप्त किया।। २-३।।

तीन ज्ञानरूपी किरणों से शोभायमान, अतिशय कान्ति का धारक और नाभिराजरूपी उदयाचल से उदय को प्राप्त हुआ वह बालकरूपी सूर्य बहुत ही शोभायमान होता था।।४।।

उस समय समस्त दिशाएँ स्वच्छता को प्राप्त हुई थीं और आकाश निर्मल हो गया था। ऐसा मालूम होता था मानो भगवान् के गुणों की निर्मलता का अनुकरण करने के लिए ही दिशाएँ और आकाश स्वच्छता को प्राप्त हुए हों।।५।।

उस समय प्रजा का हर्ष बढ़ रहा था, देव आश्चर्य को प्राप्त हो रहे थे और कल्पवृक्ष ऊँचे से प्रफुल्लित फूल बरसा रहे थे।।६।।

---

१. आदिपुराण पर्व-१३, पृ. २८६ से ३०३ तक।

अनाहताः पृधुध्वाना दध्वनुर्दिविजानकाः।
मृदुः सुगन्धिः शिशिरो मरुन्मन्दं तदा ववौ।।७।।
प्रचचाल मही तोषात् नृत्यन्तीव चलद्गिरिः।
उद्वेलो जलधिर्नूनमगमत् प्रमदं परम् ।।८।।
ततोऽबुद्ध सुराधीशः सिंहासनविकम्पनात्।
प्रयुक्तावधिरुद्भूतिं जिनस्य विजितैनसः।।९।।
ततो जन्माभिषेकाय मतिं चक्रे शतक्रतुः।
तीर्थकृद्भाविभव्याब्जबन्धौ तस्मिन्नुदेयुषि।।१०।।
तदासनानि देवानामकस्मात् प्रचकम्पिरे।
देवानुच्चासनेभ्योऽधः पातयन्तीव संभ्रमात्।।११।।
शिरांसि प्रचलन्मौलिमणीनि प्रणतिं दधुः।
सुरासुरगुरोर्जन्म भावयन्तीव विस्मयात्।।१२।।
घण्टाकण्ठीरवध्वानभेरीशंङ्खाः प्रदध्वनुः।
कल्पेशज्योतिषां वन्यभावनानां च वेश्मसु।।१३।।

देवों के दुन्दुभि बाजे बिना बजाए ही ऊँचा शब्द करते हुए बज रहे थे और कोमल, शीतल तथा सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही थी।।७।।

उस समय पहाड़ों को हिलाती हुई पृथिवी भी हिलने लगी थी मानो सन्तोष से नृत्य ही कर रही हो और समुद्र भी लहरा रहा था मानो परम आनन्द को प्राप्त होता हुआ हो।।८।।

तदनन्तर सिंहासन कम्पायमान होने से अवधिज्ञान जोड़कर इन्द्र ने जान लिया कि समस्त पापों को जीतने वाले जिनेन्द्रदेव का जन्म हुआ।।९।।

आगामी काल में उत्पन्न होने वाले भव्य जीवरूपी कमलों को विकसित करने वाले श्री तीर्थंकररूपी सूर्य के उदित होते ही इन्द्र ने उनका जन्माभिषेक करने का विचार किया।।१०।।

उस समय अकस्मात् सब देवों के आसन कम्पित होने लगे थे और ऐसे मालूम होते थे मानों उन देवों को बड़े संभ्रम के साथ ऊँचे सिंहासनों से नीचे ही उतार रहे हों।।११।।

जिनके मुकुटों में लगे हुए मणि कुछ-कुछ हिल रहे हैं, ऐसे देवों के मस्तक स्वयमेव नम्रीभूत हो गए थे और ऐसे मालूम होते थे मानो बड़े आश्चर्य से सुर, असुर आदि सबके गुरु भगवान् जिनेन्द्रदेव के जन्म की भावना ही कर रहे हों।।१२।।

उस समय कल्पवासी, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों के घरों में क्रम से अपने आप ही घण्टा, सिंहनाद, भेरी और शंखों के शब्द होने लगे थे।।१३।।

तेषामुद्भिन्नवेलानामब्धीनामिव निःस्वनम् ।
श्रुत्वा बुबुधिरे जन्म विबुधा भुवनेशिनः।।१४।।
ततः शक्राज्ञया देव पृतना निर्ययुर्दिवः।
तारतम्येन साध्वाना महाब्धेरिव वीचयः।।१५।।
इस्त्यश्वरपगन्धर्वनर्त्तकीपत्तयो वृषाः।
इत्यमूनि सुरेन्द्राणां महानीकानि निर्ययुः।।१६।।
अथ सौधर्मकल्पेशो महैरावतदन्तिनम्।
समारुह्य समं शच्या प्रतस्थे विबुधैर्वृतः।।१७।।
ततः सामानिकास्त्रायस्त्रिंशाः पारिषदामराः।
आत्मरक्षैः समं लोकपालास्तं परिवब्रिरे।।१८।।
दुन्दुभीनां महाध्वानैः सुराणां जयघोषणैः।
महानभूत्तदा ध्वानः सुरानीकेषु विस्फुरन्।।१९।।
हसन्ति केचिन्नृत्यन्ति वल्गन्त्यास्फोटयन्त्यपि।
पुरो धावन्ति गायन्ति सुरास्तत्र प्रमोदिनः।।२०।।

उठी हुई लहरों से शोभायमान समुद्र के समान उन बाजों का गम्भीर शब्द सुनकर देवों ने जान लिया कि तीन लोक के स्वामी तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है।।१४।।

तदनन्तर महासागर की लहरों के समान शब्द करती हुई देवों की सेनाएँ इन्द्र की आज्ञा पाकर अनुक्रम से स्वर्ग से निकलीं।।१५।।

हाथी, घोड़े, रथ, गन्धर्व, नृत्य करने वाली, पियादे और बैल इस प्रकार इन्द्र की ये सात बड़ी-बड़ी सेनाएँ निकलीं।।१६।।

तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने इन्द्राणी सहित बड़े भारी (एक लाख योजन विस्तृत) ऐरावत हाथी पर चढ़कर अनेक देवों से परिवृत हो प्रस्थान किया।।१७।।

तत्पश्चात् सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष और लोकपाल जाति के देवों ने उस सौधर्म इन्द्र को चारों ओर से घेर लिया अर्थात् उसके चारों ओर चलने लगे।।१८।।

उस समय दुन्दुभि बाजों के गम्भीर शब्दों से तथा देवों के जय-जय शब्द के उच्चारण से उस देव सेना में बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था।।१९।।

उस सेना में आनन्दित हुए कितने ही देव हँस रहे थे, कितने ही नृत्य कर रहे थे, कितने ही उछल रहे थे, कितने ही विशाल शब्द कर रहे थे, कितने ही आगे दौड़ते थे और कितने ही गाते थे।।२०।।

नभोऽङ्गणं तदा कृत्स्नमारुह्य त्रिदशाधिपाः।
स्वैः स्वैर्विमानैराजग्मुर्वाहनैश्च पृथग्विधैः।।२१।।
तेषामापततां यानविमानैराततं नभः।
त्रिषष्टिपटलेभ्योऽन्यत् स्वर्गान्तरमिवासृजत्।।२२।।
नभः परसि नाकीन्द्रदेहोद्योताच्छवारिणि।
स्मेराण्यप्सरसां वक्त्राण्यातेनुः पङ्कजश्रियम्।।२३।।
नभोऽम्बुधौ सुराधीशपृतनाचलवीचिके।
मकरा इव संरेजुरुत्कराः सुरवारणाः।।२४।।
क्रमादथ सुरानीकान्यम्बरादचिराद् भुवम् ।
अवतीर्य पुरीं प्रापुरयोध्यां परमर्द्धिकाम्।।२५।।
तत्पुरं विप्वगावेष्ट्य तदास्थुः सुरसैनिकाः।
राजाङ्गणं च संरुद्धमभूदिन्द्रैर्महोत्सवैः।।२६।।
प्रसवागारमिन्द्राणी ततः प्राविशदुत्सवात् ।
तत्रापश्यत् कुमारेण सार्द्धं तां जिनमातरम्।।२७।।

वे सब देव-देवेन्द्र अपने-अपने विमानों और पृथक्-पृथक् वाहनों पर चढ़कर समस्त आकाशरूपी आँगन को व्याप्त कर आ रहे थे।।२१।।

उन आते हुए देवों के विमान और वाहनों से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा मालूम होता था मानो त्रेसठ पटल वाले स्वर्ग से भिन्न किसी दूसरे स्वर्ग की ही सृष्टि कर रहा हो।।२२।।

उस समय इन्द्र के शरीर की कान्तिरूपी स्वच्छ जल से भरे हुए आकाशरूपी सरोवर में अप्सराओं के मन्द-मन्द हँसते हुए मुख, कमलों की शोभा विस्तृत कर रहे थे।।२३।।

अथवा इन्द्र की सेनारूपी चञ्चल लहरों से भरे हुए आकाशरूपी समुद्र में ऊपर को सूँड़ किए हुए देवों के हाथी मगरमच्छों के समान सुशोभित हो रहे थे।।२४।।

अनन्तर वे देवों की सेनाएँ क्रम-क्रम से बहुत ही शीघ्र आकाश से जमीन पर उतरकर उत्कृष्ट विभूतियों से शोभायमान अयोध्यापुरी में जा पहुँची।।२५।।

देवों के सैनिक चारों ओर से अयोध्यापुरी को घेरकर स्थित हो गए और बड़े उत्सव के साथ आए हुए इन्द्रों से राजा नाभिराज का आँगन भर गया।।२६।।

तत्पश्चात् इन्द्राणी ने बड़े ही उत्सव से प्रसूतिगृह में प्रवेश किया और वहाँ कुमार के साथ-साथ जिनमाता मरुदेवी के दर्शन किए।।२७।।

जिनमाता तदा शच्या दृष्टा सा सानुरागया।
संध्ययेव हरित्प्राची संगता बालभानुना।।२८।।
मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जगद्गुरुम्।
जिनमातुः पुरः स्थित्वा श्लाघते स्मेति तां शची।।२९।।
त्वमम्ब भुवनाम्बासि कल्याणी त्वं सुमङ्गला।
महादेवी त्वमेवाद्य त्वं सपुण्या यशस्विनी।।३०।।
इत्यभिष्टुत्य गूढाङ्गो तां मायानिद्रयायुजम्।
पुरो निधाय सा तस्या मायाशिशुमथापरत्।।३१।।
जगद्गुरुं समादाय कराभ्यां सागमन्मुदम् ।
चूडामणिभिवोत्सर्पत्तेजसा व्याप्तविष्टपम्।।३२।।
तद्गात्रस्पर्शमासाद्य सुदुर्लभमसौ तदा।
मेने त्रिभुवनैश्वर्य स्वसात्कृतभिवाखिलम्।।३३।।
मुहुस्तन्मुखमालोक्य स्पृष्टावाघ्राय च तद्वपुः।
परां प्रीतिमसौ भेजे हर्षविस्फारितेक्षणा।।३४।।

जिस प्रकार अनुराग (लाली) सहित सन्ध्या बालसूर्य से युक्त पूर्व दिशा को बड़े ही हर्ष से देखती है उसी प्रकार अनुराग (प्रेम) सहित इन्द्राणी ने जिनबालक से युक्त जिनमाता को बड़े ही प्रेम से देखा।।२८।।

इन्द्राणी ने वहाँ जाकर पहले कई बार प्रदक्षिणा दी फिर जगत् के गुरु जिनेन्द्रदेव को नमस्कार किया और फिर जिनमाता के सामने खड़े होकर इस प्रकार स्तुति की।।२९।।

कि हे माता, तू तीनों लोकों की कल्याणकारिणी माता है, तू ही मंगल करने वाली है, तू ही महादेवी है, तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है।।३०।।

जिसने अपने शरीर को गुप्त कर रखा है ऐसी इन्द्राणी ने ऊपर लिखे अनुसार जिनमाता की स्तुति कर उसे मायामयी नींद से युक्त कर दिया। तदनन्तर उसके आगे मायामयी दूसरा बालक रखकर शरीर से निकलते हुए तेज के द्वारा लोक को व्याप्त करने वाले चूड़ामणि रत्न के समान जगद्गुरु जिनबालक को दोनों हाथों से उठाकर वह परम आनन्द को प्राप्त हुई।।३१-३२।।

उस समय अत्यन्त दुर्लभ भगवान् के शरीर का स्पर्श पाकर इन्द्राणी ने ऐसा माना था मानो मैंने तीनों लोकों का समस्त ऐश्वर्य ही अपने अधीन कर लिया हो।।३३।।

वह इन्द्राणी बार-बार उनका मुख देखती थी, बार-बार उनके शरीर का स्पर्श करती थी और बार-बार उनके शरीर को सूँघती थी जिससे उसके नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गए थे और वह उत्कृष्ट प्रीति को प्राप्त हुई थी।।३४।।

ततः कुमारमादाय व्रजन्ती सा बभौ भृशम्।
द्यौरिवार्कमभिव्याप्तनभसं भासुरांशुभिः।।३५।।
तदा मङ्गलधारिण्यो दिक्कुमार्यः पुरो ययुः।
त्रिजगन्मङ्गलस्यास्य समृद्धय इवोच्छिखाः।।३६।।
छत्रं ध्वजं सकलशं चामरं सुप्रतिष्ठकम्।
भृङ्गारं दर्पणं तालमि त्याहुर्मङ्गलाष्टकम्।।३७।।
स तदा मङ्गलानां च मङ्गलत्वं परं वहन्।
स्वदीप्त्या दीपिकालोकान् अरुणत्तरुणांशुभान्।।३८।।
ततः करतले देवी देवराजस्य तं न्यधात्।
बालार्कमौदये सानौ प्राचीव प्रस्फुरन्मणौ।।३९।।
गीर्वाणेन्द्रस्तमिन्द्राण्याः करादादाय सादरम्।
ब्यलोकयत् स तद्रूपं संप्रीतिस्फारितेक्षणः।।४०।।

तदनन्दर जिनबालक को लेकर जाती हुई वह इन्द्राणी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो अपनी देदीप्यमान किरणों से आकाश को व्याप्त करने वाले सूर्य को लेकर जाता हुआ आकाश ही सुशोभित हो रहा है।।३५।।

उस समय तीनों लोकों में मंगल करने वाले भगवान् के आगे-आगे अष्ट मंगलद्रव्य धारण करने वाली दिक्कुमारी देवियाँ चल रही थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो इकट्ठी हुई भगवान् की उत्तम ऋद्धियाँ ही हों।।३६।।

छत्र, ध्वजा, कलश, चमर, सुप्रतिष्ठक (मोंदरा-ठोना), झारी, दर्पण और ताड़ का पंखा ये आठ मंगलद्रव्य कहलाते हैं।।३७।।

उस समय मंगलों में भी मंगलपने को प्राप्त कराने वाले और तरुण सूर्य के समान शोभायमान भगवान् अपनी दीप्ति से दीपकों के प्रकाश को रोक रहे थे।

भावार्थ :—भगवान् के शरीर की दीप्ति के सामने दीपकों का प्रकाश नहीं फैल रहा था।।३८।।

तत्पश्चात् जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रकाशमान मणियों से सुशोभित उदयाचल के शिखर पर बाल सूर्य को विराजमान कर देती है उसी प्रकार इन्द्राणी ने जिनबालक को इन्द्र की हथेली पर विराजमान कर दिया।।३९।।

इन्द्र आदर सहित इन्द्राणी के हाथ से भगवान् को लेकर हर्ष से नेत्रों को प्रफुल्लित करता हुआ उनका सुन्दर रूप देखने लगा।।४०।।

त्वं देव जगतां ज्योतिस्त्वं देव जगतां गुरुः।
त्वं देव जगतां धाता त्वं देव जगतां पतिः।।४१।।
त्वामामनन्ति सुधियः केवलज्ञानभास्वतः।
उदयाद्रिं मुनीन्द्राणामभिवन्द्यं महोन्नतिम्।।४२।।
त्वया जगदिदं मिथ्याज्ञानान्धतमसावृतम् ।
प्रबोधं नेष्यते भव्यकमलाकरबन्धुना।।४३।।
तुभ्यं नमोऽधिगुरवे नमस्तुभ्यं महाधिये।
तुभ्यं नमोऽस्तु भव्याब्जबन्धवे गुणसिन्धवे।।४४।।
त्वत्तः प्रबोधमिच्छन्तः प्रबुद्धभुवनत्रयात्।
तव पादाम्बुजं देव मूर्ध्ना दध्मो धृतादरम्।।४५।।
त्वयि प्रणयमाधत्ते मुक्तिलक्ष्मीः समुत्सुका।
त्वयि सर्वे गुणाः स्फातिं यान्त्यब्धौ मणयो यथा।।४६।।

तथा नीचे लिखे अनुसार उनकी स्तुति करने लगा—हे देव! आप तीनों जगत् की ज्योति हैं; हे देव! आप तीनों जगत के गुरू हैं; हे देव! आप तीनों जगत के विधाता हैं और हे देव! आप तीनों जगत के स्वामी हैं।।४१।।

हे नाथ! विद्वान् लोग केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय होने के लिए आपको ही बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा वन्दनीय और अतिशय उन्नत उदयाचल पर्वत मानते हैं।।४२।।

हे नाथ! आप भव्य जीवरूपी कमलों के समूह को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं। मिथ्याज्ञानरूपी गाढ़ अन्धकार से ढका हुआ यह संसार अब आपके द्वारा ही प्रबोध को प्राप्त होगा।।४३।।

हे नाथ! आप गुरुओं के भी गुरू हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप महाबुद्धिमान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप भव्य जीवरूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं और गुणों के समुद्र हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।४४।।

हे भगवन्! आपने तीनों लोकों को जान लिया है इसलिए आपसे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए हम लोग आपके चरणकमलों को बड़े आदर से मस्तक पर धारण करते हैं।।४५।।

हे नाथ! मुक्तिरूपी लक्ष्मी उत्कण्ठित होकर आप में स्नेह रखती है और जिस प्रकार समुद्र में मणि बढ़ते रहते हैं उसी प्रकार आप में अनेक गुण बढ़ते रहते हैं।।४६।।

स्तुत्वेति स तमारोप्य स्वमङ्कं सुरनायकः।
हस्तमुच्चालयामास मेरुप्रस्थान संभ्रमी।।४७।।
जयेश नन्द वर्द्धस्व त्वमित्युच्चैर्गिरः सुराः।
तदा कलकलं चक्रुर्बधिरीकृतदिङ्मुखम्।।४८।।
नभोऽङ्गणमथोत्पेतुरुच्चरज्जयघोषणाः।
सुरचापानि तन्वन्तः प्रसरद्भूषणांशुभिः।।४९।।
गन्धर्वारब्धसंगीता नेटुरप्सरसः पुरः।
भ्रूपताका समुत्क्षिप्य नभोरंङ्गे चलत्कुचाः।।५०।।
इतोऽमुतः समाकीर्ण विमानैर्द्युसदां नभः।
सरत्नैरुन्मिषन्नेत्रमिव रेजे विनिर्मलम्।।५१।।
सिताः पयोधरा नीलैः करीन्द्रैः सितकेतनैः।
सबलाकैर्विनीलाभ्रैः संगता इव रेजिरे।।५२।।

इस प्रकार देवों के अधिपति इन्द्र ने स्तुति कर भगवान् को अपनी गोद में धारण किया और मेरु पर्वत पर चलने की शीघ्रता से इशारा करने के लिए अपना हाथ ऊँचा उठाया।।४७।।

हे ईश ! आपकी जय हो, आप समृद्धिमान् हों और आप सदा बढ़ते रहें, इस प्रकार जोर-जोर से कहते हुए देवों ने उस समय इतना अधिक कोलाहल किया था कि उससे समस्त दिशाएँ बहरी हो गयी थीं।।४८।।

तदनन्तर जय-जय शब्द का उच्चारण करते हुए और अपने आभूषणों की फैलती हुई किरणों से इन्द्रधनुष को विस्तृत करते हुए देव लोग आकाशरूपी आँगन में ऊपर की ओर चलने लगे।।४९।।

उस समय जिनके स्तन कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसी अप्सराएँ अपनी भौंहरूपी पताकाएँ ऊपर उठाकर आकाशरूपी रंगभूमि में सबके आगे नृत्य कर रही थीं और गन्धर्वदेव उनके साथ अपना संगीत प्रारम्भ कर रहे थे।।५०।।

रत्नखचित देवों के विमानों से जहाँ-तहाँ सभी ओर व्याप्त हुआ निर्मल आकाश ऐसा शोभायमान होता था मानो भगवान् के दर्शन करने के लिए उसने अपने नेत्र ही खोल रखे हों।।५१।।

उस समय सफेद बादल सफेद पताकाओं सहित काले हाथियों से मिलकर ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो बगुला पक्षियों सहित काले-काले बादलों से मिल रहे हों।।५२।।

महाविमानसंघट्टैः क्षुण्णा जलधराः क्वचित्।
प्रणेशुर्महतां रोधान्नश्यन्त्येव जलात्मकाः।।५३।।
सुरेभकटदानाम्बुगन्धाकृष्टमधुव्रताः।
वनाभोगान् जहुर्लोकः सत्यमेव नवप्रियः।।५४।।
अङ्गभाभिः सुरेन्द्राणां तेजोऽर्कस्य पराहतम्।
विलिल्ये क्वाप्यविज्ञातं लज्जामिव परां गतम्।।५५।।
दिवाकरकराश्लेष विघटय्य सुरेशिनाम्।
देहोद्योता दिशो भेजुर्भोग्या हि बलिनां स्त्रियः।।५६।।
सुरेभरनोद्भूतसरोम्बुजदलाश्रितम्।
नृत्तमप्सरसां देवानकरोद् रसिकान् भृशम्।।५७।।
शृण्वन्तः कलगीतानि किन्नराणां जिनेशिनः।
गुणैर्विरचितान्यापुरमराः कर्णयोः फलम्।।५८।।

कहीं-कहीं पर अनेक मेघ देवों के बड़े-बड़े विमानों की टक्कर से चूर-चूर होकर नष्ट हो गए थे सो ठीक ही है; क्योंकि जो जड़ (जल और मूर्ख) रूप होकर भी बड़ों से वैर रखते हैं वे नष्ट होते ही हैं।।५३।।

देवों के हाथियों के गण्डस्थल से झरने वाले मद की सुगन्ध से आकृष्ट हुए भौंरों ने वन के प्रदेशों को छोड़ दिया था सो ठीक है क्योंकि यह कहावत सत्य है कि लोग नवप्रिय होते हैं—उन्हें नयी-नयी वस्तु अच्छी लगती है।।५४।।

उस समय इन्द्रों के शरीर की प्रभा से सूर्य का तेज पराहत हो गया था—फीका पड़ गया था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो लज्जा को प्राप्त होकर चुपचाप कहीं पर जा छिपा हो।।५५।।

पहले सूर्य अपने किरणरूपी हाथों के द्वारा दिशारूपी अंगनाओं का आलिंगन किया करता था किन्तु उस समय इन्द्रों के शरीरों का उद्योग सूर्य के उस आलिंगन को छुड़ाकर स्वयं दिशारूपी अंगनाओं के समीप जा पहुँचा था, सो ठीक ही है स्त्रियाँ बलवान् पुरुषों के ही भोग्य होती हैं।

भावार्थ—इन्द्रों के शरीर की कान्ति सूर्य की कान्ति को फीका कर समस्त दिशाओं में फैल गयी थी।।५६।।

ऐरावत हाथी के दाँतों पर बने हुए सरोवर में कमल दलों पर जो अप्सराओं का नृत्य हो रहा था वह देवों को भी अतिशय रसिक बना रहा था।।५७।।

उस समय जिनेन्द्रदेव के गुणों से रचे हुए किन्नर देवों के मधुर संगीत सुनकर देव लोग अपने कानों का फल प्राप्त कर रहे थे—उन्हें सफल बना रहे थे।।५८।।

वपुर्भगवतो दिव्यं पश्यन्तोऽनिभिपेक्षणाः।
नेत्रयोरनिमेषाप्तौ फलं प्रापुस्तदामराः।।५९।।
स्वाङ्कारोपं सितच्छत्रधृतिं चामरधूननम् ।
कुर्वन्तः स्वयमेवेन्द्राः प्राहुरस्य स्म वैभवम्।।६०।।
सौधर्माधिपतेरङ्कमध्यासीनमधीशिनम्।
भेजे सितातपत्रेण तदैशानसुरेश्वरः।।६१।।
सनत्कुमारमाहेन्द्रनायकौ धर्मनायकम्।
चामरैस्तं व्यधुन्वातां बहुक्षीराब्धिवीचिभिः।।६२।।
दृष्टा तदातनीं भूतिं कृदृष्टिमरुतो परे।
सन्मार्गरुचिमातेनुरिन्द्रप्रामाण्यमास्थिताः।।६३।।
कृतं सोपानमामेरोरिन्द्रनीलैर्व्यराजत।
भक्त्या खमेव सोपानपरिणाम मिवाश्रितम्।।६४।।

उस समय टिमकाररहित नेत्रों से भगवान् का दिव्य शरीर देखने वाले देवों ने अपने नेत्रों के टिमकार रहित होने का फल प्राप्त किया था।

भावार्थ—देवों की आँखों के कभी पलक नहीं झपकते इसलिए देवों ने बिना पलक झपकाए ही भगवान् के सुन्दर शरीर के दर्शन किए थे। देव भगवान के सुन्दर शरीर को पलक झपकाए बिना ही देख सके थे यही मानो उनके वैसे नेत्रों का फल था—भगवान् का सुन्दर शरीर देखने के लिए ही मानो विधाता ने उनके नेत्रों की पलकस्पन्द—टिमकाररहित बनाया था।।५९।।

जिनबालक को गोद में लेना, उन पर सफेद छत्र धारण करना और चमर ढोलना आदि सभी कार्य स्वयं अपने हाथ से करते हुए इन्द्र लोग भगवान् के अलौकिक ऐश्वर्य को प्रकट कर रहे थे।।६०।।

उस समय भगवान् सौधर्म इन्द्र की गोद में बैठे हुए थे, ऐशान इन्द्र सफेद छत्र लगाकर उनकी सेवा कर रहा था और सनत्कुमार तथा माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र उनके दोनों ओर क्षीरसागर की लहरों के समान सफेद चमर ढोल रहे थे।।६१-६२।।

उस समय की विभूति देखकर कितने ही अन्य मिथ्यादृष्टि देव इन्द्र को प्रमाण मानकर समीचीन जैनमार्ग में श्रद्धा करने लगे थे।।६३।।

मेरुपर्वत पर्यन्त नीलमणियों से बनायी हुई सीढ़ियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो आकाश ही भक्ति से सीढ़ीरूप पर्याय को प्राप्त हुआ हो।।६४।।

ज्योतिःपटलमुल्लङ्घ्य प्रययुः सुरनायकाः।
अधस्तारकितां वीथिं मन्यमानाः कुमुद्वतीम्।।६५।।
ततः प्रापुः सुराधीशा गिरिराजं तमुच्छ्रितम्।
योजनानां सहस्राणि नवतिं च नवैव च।।६६।।
मकुटश्रीरिवाभाति चूलिका यस्य मूर्द्धनि।
चूडारत्नश्रियं धत्ते यस्यामृतु विमानकम्।।६७।।
यो धत्ते स्वनितम्बेन भद्रशालवनं महत्।
परिधानमिवालीनं घनच्छायैर्महाद्रुमैः।।६८।।
मेखलायामथाद्यायां बिभर्त्ति नन्दनं वनम् ।
यः कटीसूत्रदामेव नानारत्नमयाङ्घ्रिपम्।।६९।।
यश्च सौमनसोद्यानं बिभर्त्ति शुकसच्छवि।
सपुष्पमुपसंव्यानमिवोल्लसितपल्लवम्।।७०।।
यस्यालंकुरुते कूटपर्यन्तं पाण्डुकं वनम्।
आहूतमधुपैः पुष्पैः दधानं शेखरश्रियम्।।७१।।

क्रम-क्रम से वे इन्द्र ज्योतिष पटल को उल्लंघन कर ऊपर की ओर जाने लगे। उस समय वे नीचे ताराओं सहित आकाश को ऐसा मानते थे मानो कुमुदिनियों सहित सरोवर ही हो।।६५।।

तत्पश्चात् वे इन्द्र निन्यानवे हजार योजन ऊँचे उस सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे।।६६।।

जिसके मस्तक पर स्थित चूलिका मुकुट के समान सुशोभित होती है और जिसके ऊपर सौधर्म स्वर्ग का ऋतुविमान चूड़ामणि की शोभा धारण करता है।।६७।।

जो अपने नितम्ब भाग पर (मध्यभाग पर) घनी छाया वाले बड़े-बड़े वृक्षों से व्याप्त भद्रशाल नामक महावन को ऐसा धारण करता है मानो हरे रंग की धोती ही धारण किए हो।।६८।।

उससे आगे चलकर अपनी पहली मेखला पर जो अनेक रत्नमयी वृक्षों से सुशोभित नन्दन वन को ऐसा धारण कर रहा है मानो उसकी करधनी ही हो।।६९।।

जो पुष्प और पल्लवों से शोभायमान हरे रंग के सौमनस वन को ऐसा धारण करता है मानो उसका ओढ़ने का दुपट्टा ही हो।।७०।।

अपनी सुगन्धि से भौंरो को बुलाने वाले फूलों के द्वारा मुकुट की शोभा धारण करता हुआ पाण्डुक वन जिसके शिखर पर्यन्त के भाग को सदा अलंकृत करता रहता है।।७१।।

यस्मिन् प्रतिवने दिक्षु चैत्यवेश्मानि भान्त्यलम्।
हसन्तीव द्युसद्मानि प्रोन्मिषन्मणिदीप्तिभिः।।७२।।
हिरण्मयः समुत्तुङ्गो धत्ते यो मौलिविभ्रमम्।
जम्बूद्वीपमहीभर्त्तुर्लवणाम्भोधिवाससः।।७३।।
ज्योतिर्गणश्च सातत्यात् यं पर्येति महोदयम्।
पुण्याभिषेकसंभारैः पवित्रीकृतमर्हताम्।।७४।।
आराधयन्ति यं नित्यं चारणाः पुण्यवाञ्छया।
विद्याधराश्च मुदिता जिनेन्द्रमिव सून्नतम्।।७५।।
देवोत्तरकुरून् यश्च स्वपादगिरिभिः सदा।
आवृत्य पाति निर्बाधं तद्धि माहात्म्यमुन्नतेः।।७६।।
यस्य कन्दरभागेषु निवसन्ति सुरासुराः।
साङ्गनाः स्वर्गमुत्सृज्य नाकशोभापहासिषु।।७७।।

इस प्रकार जिसके चारों वनों की प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनमन्दिर चमकते हुए मणियों की कान्ति से ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो स्वर्ग के विमानों की हँसी ही कर रहे हों।।७२।।

जो पर्वत सुवर्णमय है और बहुत ही ऊँचा है इसलिए जो लवणसमुद्ररूपी वस्त्र पहने हुए जम्बूद्वीपरूपी महाराज के सुवर्णमय मुकुट का सन्देह पैदा करता रहता है।।७३।।

जो तीर्थंकर भगवान् के पवित्र अभिषेक की सामग्री धारण करने से सदा पवित्र रहता है और अतिशय ऊँचा अथवा समृद्धिशाली है इसीलिए मानो ज्योतिषी देवों का समूह सदा जिसकी प्रदक्षिणा दिया करता है।।७४।।

जो पर्वत जिनेन्द्रदेव के समान अत्यन्त उन्नत (श्रेष्ठ और ऊँचा) है इसीलिए अनेक चारण मुनि हर्षित होकर पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से सदा जिसकी सेवा किया करते हैं।।७५।।

जो देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमियों को अपने समीपवर्ती पर्वतों से घेरकर सदा निर्बाधरूप से उनकी रक्षा किया करता है, सो ठीक ही है क्योंकि उत्कृष्टता का यही माहात्म्य है।।७६।।

स्वर्गलोक की शोभा की हँसी करने वाली जिस पर्वत की गुफाओं में देव और धरणेन्द्र स्वर्ग छोड़कर अपनी स्त्रियों के साथ निवास किया करते हैं।।७७।।

यः पाण्डुकवनोद्देशे शुचीः स्फटिकनिर्मिताः।
शिला बिभर्ति तीर्थेशामभिषेकक्रियोचिताः।।७८।।
यस्तुङ्गो विबुधाराध्यः सततर्त्तुसमाश्रयः।
सौधर्मेन्द्र इवाभाति संसेव्योऽप्सरसां गणैः।।७९।।
तमासाद्य सुराः प्रापुः प्रीतिमुन्नतिशालिनम्।
रामणीयकसंभूतिं स्वर्गस्याधिदेवताम्।।८०।।
ततः परीत्य तं प्रीत्या सुरराजः सुरैः समम्।
गिरिराजं जिनेन्द्रार्क मूर्द्धन्यस्य न्यधान्मुदा।।८१।।
तस्य प्रागुत्तराशायां महती पाण्डुकाह्वया।
शिलास्ति जिननाथानामभिषेकं बिभर्त्ति या।।८२।।
शुचिः सुरभिरत्यन्तरामणीया मनोहरा।
पृथिवीवाष्टमी भाति या युक्तपरिमण्डला।।८३।।

जो पाण्डुकवन के स्थानों में स्फटिक मणि की बनी हुई और तीर्थंकरों के अभिषेक क्रिया के योग्य निर्मल (पाण्डुकादि) शिलाओं को धारण कर रहा है।।७८।।

और जो मेरु पर्वत सौधर्मेन्द्र के समान शोभायमान होता है क्योंकि जिस प्रकार सौधर्मेन्द्र तुंग अर्थात् श्रेष्ठ अथवा उदार है उसी प्रकार वह सुमेरु पर्वत भी तुंग अर्थात् ऊँचा है, सौधर्मेन्द्र की जिस प्रकार अनेक विबुध (देव) सेवा किया करते हैं उसी प्रकार मेरु पर्वत की भी अनेक देव अथवा विद्वान् सेवा किया करते हैं, सौधर्मेन्द्र जिस प्रकार सततर्तुसमाश्रय अर्थात् ऋतुविमान का आधार अथवा छहों ऋतुओं का आश्रय है और सौधर्मेन्द्र जिस प्रकार अनेक अप्सराओं के समूह से सेवनीय है उसी प्रकार सुमेरु पर्वत भी अप्सराओं अथवा जल से भरे हुए सरोवरों से शोभायमान है।।७९।।

इस प्रकार जो ऊँचाई से शोभायमान है, सुन्दरता की खानि है और स्वर्ग का मानो अधिष्ठाता देव ही है ऐसे उस सुमेरु पर्वत को पाकर देव लोग बहुत ही प्रसन्न हुए।।८०।।

तदनन्तर इन्द्र ने बड़े प्रेम से देवों के साथ-साथ उस गिरिराज सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देकर उसके मस्तक पर हर्षपूर्वक श्रीजिनेन्द्ररूपी सूर्य को विराजमान किया।।८१।।

उस मेरु पर्वत के पाण्डुक वन में पूर्व और उत्तर दिशा के बीच अर्थात् ऐशान दिशा में एक बड़ी भारी पाण्डुक नाम की शिला है जो कि तीर्थंकर भगवान् के जन्माभिषेक को धारण करती है अर्थात् जिस पर तीर्थंकरों का अभिषेक हुआ करता है।।८२।।

वह शिला अत्यन्त पवित्र है, मनोज्ञ है, रमणीय है, मनोहर है, गोल है और अष्टमी पृथिवी सिद्धशिला के समान शोभायमान है।।८३।।

शतायता तदर्द्धं च विस्तीर्णाष्टोच्छ्रिता मता।
जिनैर्योजनमानेन सा शिलार्द्धेन्दुसंस्थितिः।।८४।।
क्षीरोदवारिभिर्भूयः क्षालिता या सुरोत्तमैः।
शुचित्वस्य परां काष्टां संबिभर्ति सदोज्ज्वला।।८५।।
शुचित्वान्महनीयत्वात् पवित्रत्वाच्च भाति या।
धारणाच्च जिनेन्द्राणां जिनमातेव निर्मला।।८६।।
यस्यां पुष्पोपहारश्री र्व्यज्यते जातु नाञ्जसा।
सावर्ण्यादमरोन्मुक्त व्यक्तमुक्ताफलच्छविः।।८७।।
जिनानामभिषेकाय या धत्ते सिंहविष्टरम्।
मेरोरिवोपरि परं परार्ध्य मेरुमुच्चकैः।।८८।।
तत्पर्यन्ते च या धत्ते सुस्थिते दिव्यविष्टरे।
जिनाभिषेचने क्लृप्ते सौधर्मैशाननाथयोः।।८९।।

वह शिला सौ योजन लम्बी है, पचास योजन चौड़ी है, आठ योजन ऊँची है और अर्ध चन्द्रमा के समान आकार वाली है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने माना है—कहा है।।८४।।

वह पाण्डुकशिला सदा निर्मल रहती है। उस पर इन्द्रों ने क्षीरसमुद्र के जल से उसका कई बार प्रक्षालन किया है इसलिए वह पवित्रता की चरम सीमा को धारण कर रही है।।८५।।

निर्मलता, पूज्यता, पवित्रता और जिनेन्द्रदेव को धारण करने की अपेक्षा वह पाण्डुकशिला जिनेन्द्रदेव की माता के समान शोभायमान होती है।।८६।।

वह शिला देवों के द्वारा ऊपर से छोड़े हुए मुक्ताफलों के समान उज्ज्वल कान्ति वाली है और देव लोग जो उस पर पुष्प चढ़ाते हैं वे सदृशता के कारण उसी में छिप जाते हैं—पृथक् रूप से कभी भी प्रकट नहीं दिखते।।८७।।

वह पाण्डुकशिला जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के लिए सदा बहुमूल्य और श्रेष्ठ सिंहासन धारण किए रहती है जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो मेरु पर्वत के ऊपर दूसरा मेरु पर्वत ही रखा हो।।८८।।

वह शिला उस मुख्य सिंहासन के दोनों ओर रखे हुए दो सुन्दर आसनों को और भी धारण किए हुए है। वे दोनों आसन जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करने के लिए सौधर्म और ऐशान इन्द्र के लिए निश्चित रहते हैं।।८९।।

नित्योपहाररुचिरा सुरैर्नित्यं कृतार्चना।
नित्यमङ्गलसंगीतनृत्तवादित्रशोभिनी।।९०।।
छत्रचामरभृङ्गारसुप्रतिष्ठकदर्पणम्।
कलशध्वजतालानि मङ्गलानि विभर्ति या।।९१।।
यामला शीलमालेव मुनीनामभिसम्मता।
जैनी तनुरिवात्यन्तभास्वरा सुरभिः शुचिः।।९२।।
स्वयं धौतापि या धौता शतशः सुरनायकैः।
क्षीरार्णवाम्बुभिः पुण्यैः पुण्यस्येवाकरक्षितिः।।९३।।
यस्याः पर्यन्तदेशेषु रत्नालोकैर्वितन्यते।
परितः सुरचापश्रीरन्योऽन्यव्यतिषङ्गिभिः।।९४।।
तामावेष्ट्य सुरास्तस्थुर्यथास्वं दिक्ष्वनुक्रमात्।
द्रष्टुकामा जिनस्यामूं जन्मकल्याणसंपदम्।।९५।।
दिक्पालाश्च यथायोग्यदिग्विदिग्भागसंश्रिताः।
तिष्ठन्ति स्म निकायैः स्वैर्जिनोत्सवदिदृक्षया।।९६।।

देव लोग सदा उस पाण्डुकशिला की पूजा करते हैं, वह देवों द्वारा चढ़ाई हुई सामग्री से निरन्तर मनोहर रहती है और नित्य ही मंगलमय संगीत, नृत्य, वादित्र आदि से शोभायमान रहती है।।९०।।

वह शिला छत्र, चमर, झारी, ठोना (मोंदरा), दर्पण, कलश, ध्वजा और ताड़ का पंखा इन आठ मंगल द्रव्यों को धारण किए हुए है।।९१।।

वह निर्मल पाण्डुकशिला शीलव्रत की परम्परा के समान मुनियों को बहुत ही इष्ट है और जिनेन्द्रदेव के शरीर के समान अत्यन्त देदीप्यमान, मनोज्ञ अथवा सुगन्धित और पवित्र है।।९२।।

यद्यपि वह पाण्डुकशिला स्वयं धौत है अर्थात् श्वेतवर्ण अथवा उज्ज्वल है तथापि इन्द्रों ने क्षीरसागर के पवित्र जल से उसका सैकड़ों बार प्रक्षालन किया है। वास्तव में वह शिला पुण्य उत्पन्न करने के लिए खान की भूमि के समान है।।९३।।

उस शिला के समीपवर्ती प्रदेशों में चारों ओर परस्पर में मिले हुए रत्नों के प्रकाश से इन्द्रधनुष की शोभा का विस्तार किया जाता है।।९४।।

जिनेन्द्रदेव के जन्मकल्याणक की विभूति को देखने के अभिलाषी देव लोग उस पाण्डुकशिला को घेरकर सभी दिशाओं में क्रम-क्रम से यथायोग्य रूप से बैठ गए।।९५।।

दिक्पाल जाति के देव भी अपने-अपने समूह (परिवार) के साथ जिनेन्द्र भगवान् का उत्सव देखने की इच्छा से दिशा-विदिशा में जाकर यथायोग्य रूप से बैठ गए।।९६।।

गगनाङ्गणमारुध्य व्याप्य मेरोरधित्यकाम्।
निवेशः सुरसैन्यानामभवत् पाण्डुके वने।।९७।।
पाण्डुकं वनमारुद्धं समन्तात् सुरनायकैः।
जहासेव दिवो लक्ष्मीं क्ष्मारुहां कुसुमोत्करैः।।९८।।
स्वस्थानाच्चलितः स्वर्गः सत्यमुद्वासित स्तदा।
मेरुस्तु स्वर्गतां प्राप धृतनाकेशवैभवः।।९९।।
ततोऽभिषेचनं भर्त्तुः कर्तुमिन्द्रः प्रचक्रमे।
निवेश्याधिशिलं सैंहं विष्टरे प्राङ्मुखं प्रभुम्।।१००।।
नभोऽशेषं तदापूर्य सुरदुन्दुभयोऽध्वनन् ।
समन्तात् सुरनारीभिरारेभे नृत्यमूर्जितम्।।१०१।।
महान् कालागुरूद्दाम धूपधूमस्तदोदगात् ।
कलङ्क इव निर्धूतः पुण्यैः पुण्यजनाशयात्।।१०२।।

देवों की सेना भी उस पाण्डुक वन में आकाशरूपी आँगन को रोककर मेरु पर्वत के ऊपरी भाग में व्याप्त होकर जा ठहरी।।९७।।

इस प्रकार चारों ओर से देव और इन्द्रों से व्याप्त हुआ वह पाण्डुकवन ऐसा मालूम होता था मानो वृक्षों के फूलों के समूह से स्वर्ग की शोभा की हँसी ही उड़ा रहा हो।।९८।।

उस समय ऐसा जान पड़ता था कि स्वर्ग अवश्य ही अपने स्थान से विचलित होकर खाली हो गया है और इन्द्र का समस्त वैभव धारण करने से सुमेरु पर्वत ही स्वर्गपने को प्राप्त हो गया है।।९९।।

तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भगवान् को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके पाण्डुक शिला पर रखे हुए सिंहासन पर विराजमान कर उनका अभिषेक करने के लिए तत्पर हुआ।।१००।।

उस समय समस्त आकाश को व्याप्त कर देवों के दुन्दुभि बाजे बज रहे थे और अप्सराओं ने चारों ओर उत्कृष्ट नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया था।।१०१।।

उसी समय कालागुरु नामक उत्कृष्ट धूप का धुआँ बड़े परिमाण में निकलने लगा था और ऐसा मालूम होता था मानो भगवान् के जन्माभिषेक के उत्सव में शामिल होने से उत्पन्न हुए पुण्य के द्वारा पुण्यात्माजनों के अन्तःकरण से हटाया गया कलंक ही हो।।१०२।।

विक्षिप्यन्ते स्म पुण्यार्घाः साक्षतोदकपुष्पकाः।
शान्तिपुष्टिवपुष्कामैर्विष्वक्पुण्यांशका इव।।१०३।।
महामण्डपविन्यासस्तत्र चक्रे सुरेश्वरैः।
यत्र त्रिभुवनं कृत्स्नमास्ते स्माबाधितं मिथः।।१०४।।
सुरानीकहसंभूता मालास्तत्रावलम्बिताः।
रेजुर्भ्रमरसंगीतैर्गातुकामा इवेशिनम्।।१०५।।
अथ प्रथमकल्पेन्द्रः प्रभोः प्रथममज्जने।
प्रचक्रे कलशोद्धारं कृतप्रस्तावनाविधिः।।१०६।।
ऐशानेन्द्रोऽपि रुन्द्रश्रीः सान्द्रचन्दनचर्चितम्।
प्रोदास्थत् कलशं पूर्ण कलशोद्धारमन्त्रवित् ।१०७।।
शेषैरपि च कल्पेन्द्रैः सानन्दजयघोषणैः।
परिचारकता भेजे यथोक्तपरिचर्यया।।१०८।।
इन्द्राणीप्रमुखा देव्यः साप्सरःपरिवारिकाः।
वभूबुः परिचारिण्यो मङ्गलद्रव्यसंपदा।।१०९।।

उसी समय शान्ति, पुष्टि और शरीर की कान्ति की इच्छा करने वाले देव चारों ओर से अक्षत, जल और पुष्पसहित पवित्र अर्घ्य चढ़ा रहे थे जो कि ऐसे मालूम होते थे मानो पुण्य के अंश ही हों।।१०३।।

उस समय वहीं पर इन्द्रों ने एक ऐसे बड़े भारी मण्डप की रचना की थी कि जिसमें तीनों लोक के समस्त प्राणी परस्पर बाधा न देते हुए बैठ सकते थे।।१०४।।

उस मण्डप में कल्पवृक्ष के फूलों से बनी हुई अनेक मालाएँ लटक रही थीं और उन पर बैठै हुए भ्रमर गा रहे थे। उन भ्रमरों के संगीत से वे मालाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो भगवान् का यश ही गाना चाहती हों।।१०५।।

तदनन्तर प्रथम स्वर्ग के इन्द्र ने उस अवसर की समस्त विधि करके भगवान् का प्रथम अभिषेक करने के लिए प्रथम कलश उठाया।।१०६।।

और अतिशय शोभायुक्त तथा कलश उठाने के मन्त्र को जानने वाले दूसरे ऐशानेन्द्र ने भी सघन चन्दन से चर्चित, भरा हुआ दूसरा कलश उठाया।।१०७।।

आनन्दसहित जय-जय शब्द का उच्चारण करते हुए शेष इन्द्र उन दोनों इन्द्रों के कहे अनुसार परिचर्या करते हुए परिचारक (सेवक) वृत्ति को प्राप्त हुए।।१०८।।

अपनी-अपनी अप्सराओं तथा परिवार से सहित इन्द्राणी आदि मुख्य-मुख्य देवियाँ भी मंगलद्रव्य धारण कर परिचर्या करने वाली हुई थीं।।१०९।।

शातकुम्भमयैः कुम्भैरम्भः क्षीराम्बुधेः शुचि।
सुराः श्रेणीकृतास्तोषादानेतुं प्रसृतास्ततः।।११०।।
पूतं स्वायम्भुवं गात्रं स्प्रष्टुं क्षीराच्छशोणितम्।
नान्यदस्ति जलं योग्यं क्षीराब्धिसलिलादृते।।१११।।
मत्वेति नाकिभिर्नूनमनूनप्रमदोदयैः।
पञ्चमस्यार्णवस्याम्भः स्नानीयमुपकल्पितम्।।११२।।
अष्टयोजनगम्भीरैर्मुखे योजनविस्तृतैः।
प्रारेभे काञ्चनैः कुम्भैः जन्माभिषवणोत्सवः।।११३।।
महामाना विरेजुस्ते सुराणामुद्धृताः करैः।
कलशाः कल्मषोन्मेषमोषिणो विघ्नकाषिणः।।११४।।
प्रादुरासन्नभोभागे स्वर्णकुम्भा धृतार्णसः।
मुक्ताफलाञ्चितग्रीवाश्चन्दनद्रवचर्चिताः।।११५।।
तेषामन्योऽन्यहस्ताग्रसंक्रान्तैर्जलपूरितैः।
कलशैर्व्यानशे व्योमहैमैः सांध्यैरिवाम्बुदैः।।११६।।

तत्पश्चात् बहुत से देव सुवर्णमय कलशों से क्षीरसागर का पवित्र जल लाने के लिए श्रेणीबद्ध होकर बड़े सन्तोष से निकले।।११०।।

'जो स्वयं पवित्र है और जिसमें रुधिर भी क्षीर के समान अत्यन्त स्वच्छ है ऐसे भगवान् के शरीर का स्पर्श करने के लिए क्षीरसागर के जल के सिवाय अन्य कोई जल योग्य नहीं है ऐसा मानकर ही मानो देवों ने बड़े हर्ष के साथ पाँचवें क्षीरसागर के जल से ही भगवान् का अभिषेक करने का निश्चय किया था।।१११-११२।।

आठ योजन गहरे, मुख पर एक योजन चौड़े (और उदर में चार योजन चौड़े) सुवर्णमय कलशों से भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव प्रारम्भ किया गया था।।११३।।

कालिमा अथवा पाप के विकास को चुराने वाले, विघ्नों को दूर करने वाले और देवों के द्वारा हाथों-हाथ उठाए हुए वे बड़े भारी कलश बहुत ही सुशोभित हो रहे थे।।११४।।

जिनके कण्ठभाग अनेक प्रकार के मोतियों से शोभायमान हैं, जो घिसे हुए चन्दन से चर्चित हो रहे हैं और जो जल से लबालब भरे हुए हैं ऐसे वे सुवर्ण कलश अनुक्रम से आकाश में प्रकट होने लगे।।११५।।

देवों के परस्पर एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाने वाले और जल से भरे हुए उन सुवर्णमय कलशों से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो वह कुछ-कुछ लालिमायुक्त सन्ध्याकालीन बादलों से ही व्याप्त हो गया हो।।११६।।

विनिर्ममे बहून् बाहून् तानादित्सुः शताध्वरः।
स तैः साभरणैर्भ्रेजे भूषणाङ्ग इवाङ्घ्रिपः।।११७।।
दोः सहस्रोद्धृतैः कुम्भैः रोक्मैर्मुक्ताफलाञ्चितैः।
भेजे पुलोमजाजानिः भाजनाङ्ग द्रुमोपमाम् ।।११८।।
जयेति प्रथमां धारां सौधर्मेन्द्रो न्यपातयत् ।
तथा कलकलो भूयान् प्रचक्रे सुरकोटिभिः।।११९।।
सैषा धारा जिनस्याधिमूर्द्धं रेजे पतन्त्यपाम्।
हिमाद्रेः शिरसोवोच्चैर च्छिन्नाम्बुर्द्युनिम्नगा।।१२०।।
ततः कल्पेश्वरैः सर्वैः समं धारा निपातिताः।
संध्याभ्रैरिव सौवर्णैः कलशैरम्बुसंभृतैः।।१२१।।
महानद्य इवापप्तन धारारता मूर्घनीशितुः।
हेलयैव महिम्नासौ ताः प्रत्यैच्छद् गिरीन्द्रवत्।।१२२।।

उन सब कलशों को हाथ में लेने की इच्छा से इन्द्र ने अपने विक्रिया बल से अनेक भुजाएँ बना लीं। उस समय आभूषण सहित उन अनेक भुजाओं से वह इन्द्र ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भूषणांग जाति का कल्पवृक्ष ही हो।।११७।।

अथवा वह इन्द्र एक साथ हजार भुजाओं द्वारा उठाए हुए और मोतियों से सुशोभित उन सुवर्णमय कलशों से ऐसा शोभायमान होता था मानो भाजनांग जाति का कल्पवृक्ष ही हो।।११८।।

सौधर्मेन्द्र ने जय-जय शब्द का उच्चारण कर भगवान् के मस्तक पर पहली जलधारा छोड़ी उसी समय जय-जय-जय बोलते हुए अन्य करोड़ों देवों ने भी बड़ा भारी कोलाहल किया था।।११९।।

जिनेन्द्रदेव के मस्तक पर पड़ती हुई वह जल की धारा ऐसी शोभायमान होती थी मानो हिमवान् पर्वत के शिखर पर ऊँचे से पड़ती हुई अखण्ड जल वाली आकाशगंगा ही हो।।१२०।।

तदनन्तर अन्य सभी स्वर्गों के इन्द्रों ने सन्ध्या समय के बादलों के समान शोभायमान, जल से भरे हुए सुवर्णमय कलशों से भगवान् के मस्तक पर एक साथ जलधारा छोड़ी। यद्यपि वह जलधारा भगवान् के मस्तक पर ऐसी पड़ रही थी मानो गंगा-सिन्धु आदि महानदियाँ ही मिलकर एक साथ पड़ रही हों तथापि मेरु पर्वत के समान स्थिर रहने वाले जिनेन्द्रदेव उसे अपने माहात्म्य से लीलामात्र में ही सहन कर रहे थे।।१२१-१२२।।

विरेजुरप्छटा दूरमुच्चलन्त्यो नभोऽङ्गणे।
जिनाङ्गस्पर्शसंसर्गात् पापान्मुक्ता इवोद्ध्वगाः।।१२३।।
काश्चनोच्चलिता व्योम्नि विबभुः शोकरच्छटाः।
छटामिवामरावासप्राङ्गणेषु तितांसवः।।१२४।।
तिर्यग्विसारिणः केचित् स्नानाम्भश्शीकरोत्कराः।
कर्णपूरश्रियं तेनुर्दिग्वधूमुखसङ्गिनीम्।।१२५।।
निर्मले श्रीपतेरङ्गे पतित्वा प्रतिबिम्बिताः।
जलधाराः स्फुरन्ति स्म दिष्टिवृद्ध्येव संगताः।।१२६।।
गिरेरिव विभोर्मूर्ध्नि सुरेन्द्राभैर्निपातिताः।
विरेजुर्निर्झराकारा धाराः क्षीरार्णवाम्भसाम्।।१२७।।
तोषादिव समुत्पत्य भूयोऽपि निपतन्त्यधः।
जलानि जहसुर्नूनं जडतां स्वां स्वशीकरैः।।१२८।।

उस समय कितनी ही जल की बूंदें भगवान् के शरीर का स्पर्श कर आकाशरूपी आँगन में दूर तक उछल रही थीं और ऐसी मालूम होती थीं मानो उनके शरीर के स्पर्श से पापरहित होकर ऊपर को ही जा रही हों।।१२३।।

आकाश में उछलती हुई कितनी ही पानी की बूंदें ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो देवों के निवासगृहों में छीटें ही देना चाहती हों।।१२४।।

भगवान् के अभिषेक जल के कितने ही छींटे दिशा-विदिशाओं में तिरछे फैल रहे थे और वे ऐसे मालूम होते थे मानो दिशारूपी स्त्रियों के मुखों पर कर्णफूलों की शोभा ही बढ़ा रहे हों।।१२५।।

भगवान् के निर्मल शरीर पर पड़कर उसी में प्रतिबिम्बित हुई जल की धाराएँ ऐसी शोभायमान हो रहीं थीं मानो अपने को बड़ा भाग्यशाली मानकर उन्हीं के शरीर के साथ मिल गयी हों।।१२६।।

भगवान् के मस्तक पर इन्द्रों द्वारा छोड़ी हुई क्षीरसमुद्र के जल की धारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो किसी पर्वत के शिखर पर मेघों द्वारा छोड़े हुए सफेद झरने ही पड़ रहे हों।।१२७।।

भगवान् के अभिषेक का जल सन्तुष्ट होकर पहले तो आकाश में उछलता था और फिर नीचे गिर पड़ता था। उस समय जो उसमें जल के बारीक छींटे रहते थे उनसे वह ऐसा मालूम होता था मानो अपनी मूर्खता पर हँस ही रहा हो।।१२८।।

स्वर्धुनीशीकरैः सार्धं स्पर्द्धा कर्त्तुमिवोर्ध्वगैः।
शीकरैर्द्राक्पुनाति स्म स्वर्धामान्यमृतप्लवः।।१२९।।
पवित्रो भगवान् पूतैरङ्गैस्तदपुना जलम्।
तत्पुनर्जगदेवेदम पावीद् व्याप्तदिङ्मुखम्।।१३०।।
तेनाम्भसा सुरेन्द्राणां पृतनाः प्लाविताः क्षणम्।
लक्ष्यन्ते स्म पयोवार्द्धौ निमग्नाङ्ग्य इवाकुलाः।।१३१।।
तदम्भः कलशास्यस्थैः सरोजैः स्सममापतत्।
हंसैरिव परां कान्तिमवापाद्रीन्द्रमस्तके।।१३२।।
अशोकपल्लवैः कुम्भैर्मुखमुक्तैस्ततं पयः।
सच्छायमभवत् कीर्णं विद्रमाणामिवाङ्कुरैः।।१३३।।
स्फाटिके स्नानपीठे तत् स्वच्छशोभमभाजलम्।
भर्त्तुः पादप्रसादेन प्रसेदिवदिवाधिकम्।।१३४।।
रत्नांशुभिः क्वचिद् व्याप्तं विचित्रैस्तद्बभौ पयः।
चापमैन्द्रं द्रवीभूय पयोभावमिवागतम्।।१३५।।

वह क्षीरसागर के जल का प्रवाह आकाशगंगा के जलबिन्दुओं के साथ स्पर्धा करने के लिए ही मानो ऊपर जाते हुए अपने जलकणों से स्वर्ग के विमानों को शीघ्र ही पवित्र कर रहा था।।१२९।।

भगवान् स्वयं पवित्र थे, उन्होंने अपने पवित्र अंगों से उस जल को पवित्र कर दिया था और जल ने समस्त दिशाओं में फैलकर इस सारे संसार को पवित्र कर दिया था।।१३०।।

उस अभिषेक के जल में डूबी हुई देवों की सेना क्षण भर के लिए ऐसी दिखाई देती थी मानो क्षीरसमुद्र में डूबकर व्याकुल ही हो रही हो।।१३१।।

वह जल कलशों के मुख पर रखे हुए कमलों के साथ सुमेरु पर्वत के मस्तक पर पड़ रहा था इसलिए ऐसी शोभा को प्राप्त हो रहा था मानो हंसों के साथ ही पड़ रहा हो।।१३२।।

कलशों के मुख से गिरे हुए अशोकवृक्ष के लाल-लाल पल्लवों से व्याप्त हुआ वह स्वच्छ जल ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो मूँगा के अंकुरों से ही व्याप्त हो रहा हो।।१३३।।

स्फटिक मणि के बने हुए निर्मल सिंहासन पर जो स्वच्छ जल पड़ रहा था वह ऐसा मालूम होता था मानो भगवान् के चरणों के प्रसाद से और भी अधिक स्वच्छ हो गया हो।।१३४।।

कहीं पर चित्र-विचित्र रत्नों की किरणों से व्याप्त हुआ वह जल ऐसा शोभायमान होता था मानो इन्द्रधनुष ही गलकर जलरूप हो गया हो।।१३५।।

क्वचिन्महो पलोत्सर्पत्प्रभाभिररुणीकृतम्।
संध्याम्बुदद्रवच्छायां भेजे तत्पावनं वनम्।।१३६।।
हरिनीलोपलच्छायाततं क्वचिददो जलम्।
तमो धनमिवैकत्र निलीनं समदृश्यत।।१३७।।
क्वचिन्मरकताभीषु प्रतानैरनुरञ्जितम्।
हरितांशुकसच्छायमभवत् स्नपनोदकम्।।१३८।।
तदम्बुशीकरैर्व्योम समाक्रामद्धिराबभौ।
जिनाङ्गस्पर्शसंतोषात् प्रहासमिव नाटयत्।।१३९।।
स्नानाम्बुशीकराः केचि दाद्युसीमविलाङ्घिनः।
व्यात्युक्षीं स्वर्गलक्ष्म्येव कर्त्तुकामाश्चकाशिरे।।१४०।।
विप्वगुच्चलिताः काश्चिदप्छटा रुद्धदिक्तटाः।
व्यावहासीमिवानन्दाद् दिग्वधूभिः समं व्यधुः।।१४१।।
दूरमुत्सारयन् स्वैरमासीनान् सुरदम्पतीन्।
स्नानपूरः स पर्यन्ता न्मेरोराशिश्रियद् द्रुतम्।।१४२।।

कहीं पर पद्मरागमणियों की फैलती हुई कान्ति से लाल-लाल हुआ वह पवित्र जल सन्ध्याकाल के पिघले हुए बादलों की शोभा धारण कर रहा था।।१३६।।

कहीं पर इन्द्रनीलमणियों की कान्ति से व्याप्त हुआ वह जल ऐसा दिखाई दे रहा था मानो किसी एक जगह छिपा हुआ गाढ़ अन्धकार ही हो।।१३७।।

कहीं पर मरकतमणियों (हरे रंग के मणियों) की किरणों के समूह से मिला हुआ वह अभिषेक का जल ठीक हरे वस्त्र के समान हो रहा था।।१३८।।

भगवान् के अभिषेक जल के उड़ते हुए छींटों से आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भगवान् के शरीर के स्पर्श से सन्तुष्ट होकर हँस ही रहा हो।।१३९।।

भगवान् के स्नान जल की कितनी ही बूँदें आकाश की सीमा का उल्लंघन करती हुई ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो स्वर्ग की लक्ष्मी के साथ जलक्रीडा (फाग) ही करना चाहती हों।।१४०।।

सब दिशाओं को रोककर सब ओर उछलती हुई कितनी ही जल की बूँदें ऐसी मालूम होती थीं मानो आनन्द से दिशारूपी स्त्रियों के साथ हँसी ही कर रही हों।।१४१।।

वह अभिषेक जल का प्रवाह अपनी इच्छानुसार बैठे हुए सुरदम्पत्तियों को दूर हटाता हुआ शीघ्र ही मेरुपर्वत के निकट जा पहुँचा।।१४२।।

उदभारः पयोवार्द्धेरापतन्मन्दरादधः।
आभूतलं तदुन्मानं मिमान इव दिद्युते।।१४३।।
गुहामुखैरिवापीतः शिखरैरिव खात्कृतः।
कन्दरैरिव निष्ठ्यूतः प्राध्नोन्मेरौ पयः प्लवः।।१४४।।
किं गौर्यस्त्रिदशैर्मुक्तो युक्ता मे स्वर्गताधुना।
नूनमित्यकखीन्मेरुः दिवं स्नानाम्बुनिर्झरैः।।१४५।।
अह्लगीदखिलं व्योम ज्योतिश्चक्रं समस्थगीत्।
प्रोर्णवीन्मेरुमारुन्धन् क्षीरपूरः स रोदसी।।१४६।।
क्षणमक्षणनीयेषु वनेषु कृतविश्रमः।
प्राप्तक्षण इवान्यत्र व्याप सोऽम्भःप्लवः क्षणात्।।१४७।।
तरुषण्डनिरुद्धत्वादन्तवर्णमनुल्वणः।
वयवीथीरतीत्यारात् प्रससार महाप्लवः।।१४८।।

और मेरु पर्वत से नीचे भूमि तक पड़ता हुआ वह क्षीरसागर के जल का प्रवाह ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो मेरु पर्वत को खड़े नाप से नाप ही रहा हो।।१४३।।

उस जल का प्रवाह मेरु पर्वत पर ऐसा बढ़ रहा था मानो शिखरों के द्वारा खकार कर दूर किया जा रहा हो, गुहारूप मुखों के द्वारा पिया जा रहा हो और कन्दराओं के द्वारा बाहर उगला जा रहा हो।।१४४।।

उस समय मेरु पर्वत पर अभिषेक जल के जो झरने पड़ रहे थे उनसे ऐसा मालूम होता था मानो वह यह कहता हुआ स्वर्ग को धिक्कार ही दे रहा हो कि अब स्वर्ग क्या वस्तु है ? उसे तो देवों ने भी छोड़ दिया है। इस समय समस्त देव हमारे यहाँ आ गए हैं इसलिए हमें ही साक्षात् स्वर्ग मानना योग्य है।।१४५।।

उस जल के प्रवाह ने समस्त आकाश को ढक लिया था, ज्योतिष्पटल को घेर लिया था, मेरु पर्वत को आच्छादित कर लिया था और पृथिवी तथा आकाश के अन्तराल को रोक लिया था।।१४६।।

उस जल के प्रवाह ने मेरु पर्वत के अच्छे वनों में क्षण भर विश्राम किया और फिर सन्तुष्ट हुए के समान वह दूसरे ही क्षण में वहां से दूसरी जगह व्याप्त हो गया।।१४७।।

वह जल का बड़ा भारी प्रवाह वन के भीतर वृक्षों के समूह से रुक जाने के कारण धीरे-धीरे चलता था परन्तु ज्यों ही उसने वन के मार्ग को पार किया त्यों ही वह शीघ्र ही दूर तक फैल गया।।१४८।।

स बभासे पयःपूरः प्रसर्पन्नधिशैलराट् ।
सितैरिवांशुकैरेनं स्थगयन् स्थगिताम्बरः।।१४९।।
विष्वगद्रीन्द्रमूर्णित्वा (मूर्णुत्वा) पयोऽर्णवजलप्लवः।
प्रवहन्नवहच्छायां स्वःस्रवन्ती पयः स्नुतेः।।१५०।।
शब्दाद्वैतमिवातन्वन् कुर्वन् सृष्टिमिवाम्भयीम्।
विललास पयःपूरः प्रध्वनन्निद्धकुक्षिषु।।१५१।।
विश्वगाप्लावितो मेरुर पप्लवैरामहीतलम्।
अज्ञातपूर्वतां भेजे मनसाज्ञायिनामपि।।१५२।।
न मेरुरयमुत्फुल्लनमेरुतरुराजितः।
राजतो गिरिरेष स्यादुल्लसद्धिसपाण्डरः।।१५३।।

मेरु पर्वत पर फैलता और आकाश को आच्छादित करता हुआ वह जल का प्रवाह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मेरु पर्वत को सफेद वस्त्रों से ढक ही रहा हो।।१४९।।

सब ओर से मेरु पर्वत को आच्छादित कर बहता हुआ वह क्षीरसागर के जल का प्रवाह आकाशगंगा के जल प्रवाह की शोभा धारण कर रहा था।।१५०।।

मेरु पर्वत की गुफाओं में शब्द करता हुआ वह जल का प्रवाह ऐसा मालूम होता था मानो शब्दाद्वैत का ही विस्तार कर रहा हो अथवा सारी सृष्टि को जलरूप ही सिद्ध कर रहा हो।

भावार्थ—शब्दाद्वैतवादियों का कहना है कि संसार में शब्द ही शब्द है, शब्द के सिवाय और कुछ भी नहीं है। उस समय सुमेरु की गुफाओं में पड़ता हुआ जलप्रवाह भी भारी शब्द कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो शब्दाद्वैतवाद का समर्थन ही कर रहा हो। ईश्वरसृष्टिवादियों का कहना है कि यह समस्त सृष्टि पहले जलमयी थी, उसके बाद ही स्थल आदि की रचना हुई है उस समय सब ओर जल-ही-जल दिखलाई पड़ रहा था इसलिए ऐसा मालूम होता था मानो वह सारी सृष्टि को जलमय ही सिद्ध करना चाहता हो।।१५१।।

वह मेरु पर्वत ऊपर से लेकर नीचे पृथिवीतल तक सभी ओर जलप्रवाह से तर हो रहा था इसलिए प्रत्यक्षज्ञानी देवों को भी अज्ञात पूर्व मालूम होता था अर्थात् ऐसा जान पड़ता था जैसे उसे पहले कभी देखा ही न हो।।१५२।।

उस समय वह पर्वत शोभायमान मृणाल के समान सफेद हो रहा था और फूले हुए नमेरु वृक्षों से सुशोभित था इसलिए यही मालूम होता था कि वह मेरु नहीं है किन्तु कोई दूसरा चाँदी का पर्वत है।।१५३।।

पीयूषस्यैव राशिर्नु स्फाटिको नु शिलोच्चयः।
सुधाधवलितः किं नु प्रासादस्त्रिजगच्छ्रियः।।१५४।।
वितर्कमिति तन्वानो गिरिराजे पयःप्लवः।
व्यानशे विश्वदिक्कान्तो दिक्कान्ताः स्नपयन्निव।।१५५।।
ऊर्ध्वमुच्चलिताः केचित् शीकरा विश्वदिग्गताः।
श्वेतच्छत्रश्रियं मेरोरातेनुर्विधुनिर्मलाः।।१५६।।
हारनीहारकह्लारकुमुदाम्भोजसत्त्विषः।
प्रावर्त्तन्त पयःपूरा यशःपूरा इवार्हतः।।१५७।।
गगनाङ्गणपुष्पोपहारा हारामलत्विषः।
दिग्वधूकर्णपूरास्ते वभुः स्नपानाम्बुशीकराः।।१५८।।
शीकरैराकिरन्नाकमालोकान्तविसर्पिभिः।
ज्योतिर्लोकमनुप्राप्य जजृम्भे सोऽम्भसां प्लवः।।१५९।।

क्या यह अमृत की राशि है ? अथवा स्फटिकमणि का पर्वत है ? अथवा चूने से सफेद किया गया तीनों जगत् की लक्ष्मी का महल है—इस प्रकार मेरु पर्वत के विषय में वितर्क पैदा करता हुआ वह जल का प्रवाह सभी दिशाओं के अन्त तक इस प्रकार फैल गया मानो दिशारूपी स्त्रियों का अभिषेक ही कर रहा हो।।१५४-१५५।।

चन्द्रमा के समान निर्मल उस अभिषेकजल की कितनी ही बूँदें ऊपर को उछलकर सब दिशा में फैल गयी थीं जिससे ऐसी जान पड़ती थीं मानो मेरु पर्वत पर सफेद छत्र की शोभा ही बढ़ा रही हों।।१५६।।

हार, बर्फ, सफेद कमल और कुमुदों के समान सफेद जल के प्रवाह सब ओर प्रवृत्त हो रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेन्द्र भगवान् के यश के प्रवाह ही हों।।१५७।।

हार के समान निर्मल कान्ति वाले वे अभिषेक जल के छींटे ऐसे मालूम होते थे मानो आकाशरूपी आँगन में फूलों के उपहार ही चढ़ाए गए हों अथवा दिशारूपी स्त्रियों के कानों के कर्णफूल ही हों।।१५८।।

वह जल का प्रवाह लोक के अन्त तक फैलने वाली अपनी बूँदों से ऊपर स्वर्ग तक व्याप्त होकर नीचे की ओर ज्योतिष्पटल तक पहुँचकर सब ओर वृद्धि को प्राप्त हो गया था।।१५९।।

स्नानपूरे निमग्नाङ्ग्यस्तारास्तरलरोचिषः।
मुक्ताफलश्रियं भेजुर्विप्रकीर्णाः समन्ततः।।१६०।।
तारकाः क्षणमध्यास्य स्नानपूरं विनिस्सृताः।
पयोलवस्रुतो रेजुः करकाणामिवालयः।।१६१।।
स्नानाम्भसि बभौ भास्वान् तत्क्षणं कृतनिर्वृतिः।
तप्तः पिण्डोमहांल्लौहः पानीयमिव पायितः।।१६२।।
पयःपूरे वहत्यस्मिन् श्वेतभानु र्व्यभाव्यत।
जरद्धंस इवोदूढ जडिमा मन्थरं तरन्।।१६३।।
ग्रहमण्डलमाकृष्टं पर्यस्तैः सलिलप्लवैः।
विपर्यस्तां गतिं भेजे वक्रचारमिवाश्रितम्।।१६४।।
भगणः प्रगुणीभूत किरणं जलविप्लुतम् ।
सिषेवे पूषणं मोहात् प्रालेयांशुविशङ्कया।।१६५।।
ज्योतिश्चक्रं क्षरज्ज्योतिः क्षीरपूरमनुभ्रमत् ।
वेलातिक्रमभीत्येव नास्थादेकमपि क्षणम्।।१६६।।

उस समय आकाश में चारों ओर फैले हुए तारागण अभिषेक के जल में डूबकर कुछ चंचल प्रभा के धारक हो गए थे इसलिए बिखरे हुए मोतियों के समान सुशोभित हो रहे थे।।१६०।। वे तारागण अभिषेक जल के प्रवाह में क्षण भर रहकर उससे बाहर निकल आए थे परन्तु उस समय भी उनसे कुछ-कुछ पानी चू रहा था इसलिए ओलों की पंक्ति के समान शोभायमान हो रहे थे।।१६१।।

सूर्य भी उस जलप्रवाह में क्षण भर रहकर उससे अलग हो गया था, उस समय वह ठण्डा भी हो गया था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो कोई तपा हुआ लोहे का बड़ा भारी गोला पानी में डालकर निकाला गया हो।।१६२।। उस बहते हुए जलप्रवाह में चन्द्रमा ऐसा मालूम होता था मानो ठण्ड से जड़ होकर (ठिठुरकर) धीरे-धीरे तैरता हुआ एक बूढ़ा हंस ही हो।।१६३।। उस समय ग्रहमण्डल भी चारों ओर फैले हुए जल के प्रवाह से आकृष्ट होकर (खिंचकर) विपरीत गति को प्राप्त हो गया था। मालूम होता है कि उसी कारण से वह अब भी वक्रगति का आश्रय लिये हुए है।।१६४।।

उस समय जल में डूबे हुए तथा सीधी और शान्त किरणों से युक्त सूर्य को भ्रान्ति से चन्द्रमा समझकर तारागण भी उसकी सेवा करने लगे थे।।१६५।। सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र जलप्रवाह में डूबकर कान्तिरहित हो गया था और उस जलप्रवाह के पीछे-पीछे चलने लगा था मानो अवसर चूक जाने के भय से एक क्षण भी नहीं ठहर सका हो।।१६६।।

ज्योतिःपटलमित्यासीत् स्नानौघैः क्षणमाकुलम्।
कुलालचक्रमाविद्धमिव तिर्यक्परिभ्रमत् ।।१६७।।
पर्यापतद्धिरुत्संगाद् गिरेः स्वर्लोकधारिणः।
विरलैः स्नानपूरैस्तैर्नृलोकः पावनीकृतः।।१६८।।
निर्वापिता मही कृत्स्ना कुलशैलाः पवित्रिताः।
कृता निरीतयो देशाः प्रज्ञाः क्षेमेण योजिताः।।१६९।।
कृत्स्नामिति जगन्नाडीं पवित्रीकुर्वतामुना।
किं नाम स्नानपूरेण श्रेयः शेषितमङ्गिनाम्।।१७०।।
अथ तस्मिन् महापूरे ध्वानापूरितदिङ्मुखे।
प्रशान्ते शमिताशेषभुवनोष्मण्य शेषतः।।१७१।।
रेचितेषु महामेरोः कन्दरेषु जलप्लवैः।
प्रत्याश्वासमिवायाते मेरौ सवनकानने।।१७२।।
धूपेषु दह्यमानेषु सुगन्धीन्धनयोनिषु।
ज्वलत्सु मणिदीपेषु भक्तिमात्रोपयोगिषु।।१७३।।

इस प्रकार स्नानजल के प्रवाह से व्याकुल हुआ ज्योतिष्पटल क्षण भर के लिए घुमाए हुए कुम्हार के चक्र के समान तिरछा चलने लगा था।।१६७।। स्वर्गलोक को धारण करले वाले मेरु पर्वत के मध्य भाग से सब ओर पड़ते हुए भगवान् के स्नानजल ने जहाँ-तहाँ फैलकर समस्त मनुष्यलोक को पवित्र कर दिया था।।१६८।।

उस जलप्रवाह ने समस्त पृथिवी सन्तुष्ट (सुखरूप) कर दी थी, सब कुलाचल पवित्र कर दिए थे, सब देश अतिवृष्टि आदि ईतियों से रहित कर दिए थे और समस्त प्रजा कल्याण से युक्त कर दी थी। इस प्रकार समस्त लोकनाड़ी को पवित्र करते हुए उस अभिषेक जल के प्रवाह ने प्राणियों का ऐसा कौन-सा कल्याण बाकी रख छोड़ा था जिसे उसने न किया हो ? अर्थात् कुछ भी नहीं।।१६९-१७०।।

अथानन्तर अपने 'छल छल' शब्दों से समस्त दिशाओं को भरने वाला तथा समस्त लोक की उष्णता शान्त करने वाला वह जल का बड़ा भारी प्रवाह जब बिलकुल ही शान्त हो गया।।१७१।।

जब मेरु पर्वत की गुफाएँ जल से रिक्त (खाली) हो गयीं, जल और वनसहित मेरु पर्वत ने कुछ विश्राम लिया।।१७२।।

जब सुगन्धित लकड़ियों की अग्नि में अनेक प्रकार के धूप जलाए जाने लगे और मात्र भक्ति प्रकट करने के लिए मणिमय दीपक प्रज्वलित किए गए।।१७३।।

पुण्यपाठान् पठत्सूच्चैः संपाठं सुरवन्दिपु।
गायन्तीषु सुकण्ठीषु किन्नरीषु कलस्वनम्।।१७४।।
जिनकल्याणसंबन्धि मङ्गलोद्गीतिनिस्स्वनैः।
कुर्वाणे विश्वगीर्वाण लोकस्य श्रवणोत्सवम्।।१७५।।
जिनजन्माभिषेकार्थ प्रतिबद्धैर्निदर्शनैः।
नाट्यवेदं प्रयुञ्जाने सुरशैलूषपेटके।।१७६।।
गन्धर्वारब्धसंगीतमृदङ्गध्वनिमूर्च्छिते।
दुन्दुभिध्वनिते मन्द्रे श्रोत्रानन्दं प्रतन्वति।।१७७।।
कुचकुम्भैः सुरस्त्रीणां कुङ्कुमाङ्कैरलंकृते।
हाररोचिःप्रसूनौघकृतपुष्पोपहारके।।१७८।।
मेरुरङ्गेऽप्सरोवृन्दे सलीलं परिनृत्यति।
कारणैरङ्गहारेश्च सलयैश्च परिक्रमैः।।१७९।।
शृण्वत्सु मङ्गलोद्गीतीः सावधानं सुधाशिषु।
वृत्तेषु जनजल्पेषु जिनप्राभवशंसिषु।।१८०।।

जब देवों के बन्दीजन अच्छी तरह उच्च स्वर से पुण्य बढ़ाने वाले अनेक स्तोत्र पढ़ रहे थे, मनोहर आवाज वाली किन्नरी देवियाँ मधुर शब्द करती हुई गीत गा रही थीं।।१७४।।

जब जिनेन्द्र भगवान् के कल्याणक सम्बन्धी मंगल गाने के शब्द समस्त देव लोगों के कानों का उत्सव कर रहे थे।।१७५।।

जब नृत्य करने वाले देवों का समूह जिनेन्द्रदेव के जन्मकल्याणक सम्बन्धी अर्थों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक उदाहरणों के द्वारा नाट्यवेद का प्रयोग कर रहा था—नृत्य कर रहा था।।१७६।।

जब गन्धर्व देवों के द्वारा प्रारम्भ किए हुए संगीत और मृदंग की ध्वनि से मिला हुआ दुन्दुभि बाजों का गम्भीर शब्द कानों का आनन्द बढ़ा रहा था।।१७७।।

जब केसर लगे हुए देवांगनाओं के स्तनरूपी कलशों से शोभायमान तथा हारों की किरणरूपी पुष्पों के उपहार से युक्त सुमेरु पर्वतरूपी रंगभूमि में अप्सराओं का समूह हाथ उठाकर, शरीर हिलाकर और ताल के साथ-साथ फिरकी लगाकर लीलासहित नृत्य कर रहा था।।१७८-१७९।।

जब देव लोग सावधान होकर मंगलगान सुन रहे थे और अनेक जनों के बीच भगवान् के प्रभाव की प्रशंसा करने वाली बातचीत हो रही थी।।१८०।।

नान्दीतूर्यरवे विश्वगापूरयति रोदसी।
जयघोषप्रतिध्वानैः स्तुवान इव मन्दरे।।१८१।।
सञ्चरत्खचरी वक्त्रघर्माम्बुकणचुम्बिनि।
धुतोपान्तवने वाति मन्दं मन्दं नभस्वति।।१८२।।
सुरदौवारिकैश्चित्रवेत्रदण्डधरैर्मुहुः ।
सामाजिकजने विष्वक् सार्यमाणे सहुङ्कृतम्।।१८३।।
तत्समुत्सारणत्रासान्मूकीभावमुपागते ।
अनियुक्तजने सद्यश्चित्रार्पित इव स्थिते।।१८४।।
शुद्धाम्बुस्नपने निष्ठां गते गन्धाम्बुभिः शुभैः।
ततोऽभिषेक्तुमीशानं शतयज्वा प्रचक्रमे।।१८५।।
(दशभिः कुलकम्)
श्रीमद्गन्धोदकैर्द्रव्यै र्गन्धाहूतमधुव्रतैः।
अभ्यषिञ्चद् विधानज्ञो विधातारं शताध्वरः।।१८६।।
पूता गन्धाम्बुधारासावापतन्ती तनौ विभोः।
तद्गन्धातिशयात् प्राप्तलज्जेवासीदवाङ्मुखी।।१८७।।

जब नान्दी, तुरही आदि बाजों के शब्द सब ओर आकाश और पृथिवी के बीच के अन्तराल को भर रहे थे, जब जय घोषणा की प्रतिध्वनियों से मानो मेरु पर्वत ही भगवान् की स्तुति कर रहा था।।१८१।।

जब सब ओर घूमती हुई विद्याधरियों के मुख के स्वेद जल के कणों का चुम्बन करने वाला वायु समीपवर्ती वनों को हिलाता हुआ धीरे-धीरे बह रहा था।।१८२।।

जब विचित्र वेत्र के दण्ड हाथ में लिए हुए देवों के द्वारपाल सभा के लोगों को हुंकार शब्द करते हुए चारों ओर पीछे हटा रहे थे।।१८३।।

'हमें द्वारपाल पीछे न हटा दें' इस डर से कितने ही लोग चित्रलिखित के समान जब चुपचाप बैठे हुए थे।।१८४।।

और जब शुद्ध जल का अभिषेक समाप्त हो गया था तब इन्द्र ने शुभ सुगन्धित जल से भगवान् का अभिषेक करना प्रारम्भ किया।।१८५।।

विधि विधान को जानने वाले इन्द्र ने अपनी सुगन्धि से भ्रमरों का आह्वान करने वाले सुगन्धित जलरूपी द्रव्य से भगवान् का अभिषेक किया।।१८६।।

भगवान् के शरीर पर पड़ती हुई वह सुगन्धित जल की पवित्र धारा ऐसी मालूम होती थी मानो भगवान् के शरीर की उत्कृष्ट सुगन्धि से लज्जित होकर ही अधोमुखी (नीचे को मुख किए हुए) हो गयी हो।।१८७।।

कनत्कनकभृङ्गारनालाद्धारा पतन्त्यसौ।
रेजे भक्तिभरेणैव जिनमानन्तुमुद्यता।।१८८।।
विभोर्देहप्रभोत्सर्पैस्तडिदापिञ्जरैस्तता।
साभाद् विभावसौ दीप्ते प्रयुक्तेव धृताहुतिः।।१८९।।
निसर्गसुरभिण्यङ्गे विभोरत्यन्तपावने।
पतित्वा चरितार्था सा स्वसादकृत तद्गुणान्।।१९०।।
सुगन्धिकुसुमैर्गन्धद्रव्यैरपि सुवासिता।
साधान्नतिशयं कंचिद् विभोरङ्गेऽम्भसां ततिः।।१९१।।
समस्ताः पूरयन्त्याशा जगदानन्ददायिनी।
वसुधारेव धारासौ क्षीरधारा मुदेऽस्तु नः।।१९२।।
या पुण्यास्त्रवधारेव सूते संपत्परम्पराम्।
सास्मान्गन्धपयोधारा धिनोत्वनिधनै र्धनैः।।१९३।।

देदीप्यमान सुवर्ण की झारी के नाल से पड़ती हुई वह सुगन्धित जल की धारा ऐसी शोभायमान होती थी मानो भक्ति के भार से भगवान् को नमस्कार करने के लिए ही उद्यत हुई हो।।१८८।। बिजली के समान कुछ-कुछ पीले भगवान् के शरीर की प्रभा के समूह से व्याप्त हुई वह धारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जलती हुई अग्नि में घी की आहुति ही डाली जा रही हो।।१८९।।

स्वभाव से सुगन्धित और अत्यन्त पवित्र भगवान् के शरीर पर पड़कर वह धारा चरितार्थ हो गयी थी और उसने भगवान् के उक्त दोनों ही गुण अपने अधीन कर लिए थे—ग्रहण कर लिये थे।।१९०।।

यद्यपि वह जल का समूह सुगन्धित फूलों और सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किया गया था तथापि वह भगवान् के शरीर पर कुछ भी विशेषता धारण नहीं कर सकता था—उनके शरीर की सुगन्धि के सामने उस जल की सुगन्धि तुच्छ जान पड़ती थी।।१९१।।

वह दूध के समान श्वेत जल की धारा हम सबके आनन्द के लिए हो जो कि रत्नों की धारा के समान समस्त आशाओं (इच्छाओं और दिशाओं) को पूर्ण करने वाली तथा समस्त जगत् को आनन्द देने वाली थी।।१९२।।

जो पुण्यास्त्रव की धारा के समान अनेक सम्पदाओं को उत्पन्न करने वाली है ऐसी वह सुगन्धित जल की धारा हम लोगों को कभी नष्ट नहीं होने वाले रत्नत्रयरूपी धन से सन्तुष्ट करे।।१९३।।

या निशातासिधारेव विघ्नवर्ग विनिघ्नती।
पुण्यगन्धाम्भसां धारा सा शिवाय सदास्तु नः।।१९४।।
माननीया मुनीन्द्राणां जगतामेकपावनी।
साव्याद् गन्धाम्बुधारास्मान् या स्म व्योमापगायते।।१९५।।
तनुं भगवतः प्राप्य याता यातिपवित्रिताम्।
परित्रयतु नः स्वान्तं धारा गन्धाम्भसामसी।।१९६।।
कृत्वा गन्धोदकैरित्थमभिषेकं सुरोत्तमाः।
जगतां शान्तये शान्तिं घोषयामासुरुच्चकैः।।१९७।।
प्रचक्रुरुत्तमाङ्गेषु चक्रः सर्वाङ्गसंगतम्।
स्वर्गस्योपायनं चक्रस्तद्गंधाम्बुदिवौकसः।।१९८।।
गन्धाम्बुस्नपनस्यान्ते जयकोलाहलैः समम्।
व्यात्युक्षीममराश्चक्रुः सचूर्णैर्गन्धवारिभिः।।१९९।।
निवृत्ता वभिषेकस्य कृतावभृथमज्जनाः।।
परीत्य परमं ज्योतिरानर्चुर्भुवनार्चितम्।।२००।।

जो पैनी तलवार की धार के समान विघ्नों का समूह नष्ट कर देती है ऐसी वह पवित्र सुगन्धित जल की धारा सदा हम लोगों के मोक्ष के लिए हो।।१९४।।.

जो बड़े-बड़े मुनियों को मान्य है, जो जगत् को एकमात्र पवित्र करने वाली है और जो आकाशगंगा के समान शोभायमान है ऐसी वह सुगन्धित जल की धारा हम सबकी रक्षा करे।।१९५।।

और जो भगवान् के शरीर को पाकर अत्यन्त पवित्रता को प्राप्त हुई है ऐसी वह सुगन्धित जल की धारा हम सबके मन को पवित्र करे।।१९६।।

इस प्रकार इन्द्र सुगन्धित जल से भगवान् का अभिषेक कर जगत् की शान्ति के लिए उच्च स्वर से शान्ति मन्त्र पढ़ने लगे।।१९७।।

तदनन्तर देवों ने उस गन्धोदक को पहले अपने मस्तकों पर लगाया, फिर सारे शरीर में लगाया और फिर बाकी बचे हुए को स्वर्ग ले जाने के लिए रख लिया।।१९८।।

सुगन्धित जल का अभिषेक समाप्त होने पर देवों ने जय-जय शब्द के कोलाहल के साथ-साथ चूर्ण मिले हुए सुगन्धित जल से परस्पर में फाग की अर्थात् वह सुगन्धित जल एक-दूसरे पर डाला।।१९९।।

इस प्रकार अभिषेक की समाप्ति होने पर सब देवों ने स्नान किया और फिर त्रिलोकपूज्य उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप भगवान् की प्रदक्षिणा देकर पूजा की।।२००।।

गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च साक्षतैः कुसुमोदकैः।
मन्त्रपूतैः फलैः सार्धैः सुरेन्द्रा विभुमीजिरे।।२०१।।
कृतेष्टयः कृतानिष्टविधाताः कृतपौष्टिकाः।
जन्माभिषेकमित्युच्चैर्नाकेन्द्रा निरतिष्ठिपन्।।२०२।।
इन्द्रेन्द्राण्यौ समं देवैः परमानन्ददायिनम् ।
क्षणं चूडामणिं मेरोः परीत्यैनं प्रणेमतुः।।२०३।।
दिवोऽपप्तत्तदा पौष्पी वृष्टिर्जलकणैः समम्।
मुक्तानन्दाश्रुबिन्दूनां श्रेणीव त्रिदिवश्रिया।।२०४।।
रजःपटलमाधूय सुरागसुमनोभवम्।
मातरिश्वा ववौ मन्दं स्नानाम्भश्शीकरान् किरन्।।२०५।।
सज्योतिर्भगवान् मेरोः कुलशैलायिताः सुराः।
क्षीरमेघायिताः कुम्भाः सुरनार्योऽप्सरायिताः।।२०६।।
शक्रः स्नपयिताद्रीन्द्रः स्नानपीठी सुराङ्गनाः।
नर्त्तक्यः किङ्करा देवाः स्नानद्रोणी पयोऽर्णवः।।२०७।।

सब इन्द्रों ने मन्त्रों से पवित्र हुए जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य के द्वारा भगवान् की पूजा की।।२०१।।

इस तरह इन्द्रों ने भगवान् की पूजा की, उसके प्रभाव से अपने अनिष्ट—अमंगलों का नाश किया और फिर पौष्टिक कर्म कर बड़े समारोह के साथ जन्माभिषेक की विधि समाप्त की।।२०२।। तत्पश्चात् इन्द्र-इन्द्राणी ने समस्त देवों के साथ परम आनन्द देने वाले और क्षण भर के लिए मेरु पर्वत पर चूड़ामणि के समान शोभायमान होने वाले भगवान् की प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया।।२०३।।

उस समय स्वर्ग से पानी की छोटी-छोटी बूँदों के साथ फूलों की वर्षा हो रही थी और वह ऐसी मालूम होती थी मानो स्वर्ग की लक्ष्मी के हर्ष से पड़ते हुए अश्रुओं की बूँदें ही हों।।२०४।। उस समय कल्पवृक्षों के पुष्पों से उत्पन्न हुए पराग-समूह को कँपाता हुआ और भगवान् के अभिषेक जल की बूँदों को बरसाता हुआ वायु मन्द-मन्द बह रहा था।।२०५।। उस समय भगवान् वृषभदेव मेरु के समान जान पड़ते थे, देव कुलाचलों के समान मालूम होते थे, कलश दूध के मेघों के समान प्रतिभासित होते थे और देवियाँ जल से भरे हुए सरोवरों के समान आचरण करती थीं।।२०६।।

जिनका अभिषेक कराने वाला स्वयं इन्द्र था, मेरु पर्वत स्नान करने का सिंहासन था, देवियाँ नृत्य करने वाली थीं, देव किंकर थे और क्षीरसमुद्र स्नान करने का कटाह (टब)

इति श्लाध्यतमे मेरौ निर्वृत्तः स्नपनोत्सवः।
स यस्य भगवान् पूयात् पूतात्मा वृषभो जगत्।।२०८।।

मालिनी

अथ पवनकुमाराः स्वामिव प्राज्यभक्तिं
दिशि दिशि विभजन्तो मन्दमन्दं विचेरुः।
मुमुचुरमृतगर्भाः सीकरासारधाराः
किल जलदकुमारा भैरवीषु स्थलीषु।।२०९।।
सपदि विधुतकल्पानोकहैर्व्योमगङ्गा—
शिशिरतरतरङ्गोत्क्षेपदक्षैर्मरुद्भिः।
तटवनमनुपुष्पाण्याहरद्भिः समन्तात्
परगतिमिव कर्त्तुं बभ्रमे शैलभर्त्तुः।।२१०।।
अनुचितमशिवानां स्थातुमद्य त्रिलोक्यां
जनयति शिवमस्मिन्नुत्सवे विश्वभर्त्तुः।
इति किल शिवमुच्चैर्घोषयन् दुन्दुभीनां
सुरकरनिहतानां शुश्रुवे मन्द्रनादः।।२११।।

था। इस प्रकार अतिशय प्रशंसनीय मेरु पर्वत पर जिनका स्नपन महोत्सव समाप्त हुआ था वे पवित्र आत्मा वाले भगवान् समस्त जगत् को पवित्र करें।।२०७-२०८।।

अथानन्तर पवनकुमार जाति के देव अपनी उत्कृष्ट भक्ति को प्रत्येक दिशाओं में वितरण करते हुए के समान धीरे-धीरे चलने लगे और मेघकुमार जाति के देव उस मेरु पर्वत सम्बन्धी भूमि पर अमृत से मिले हुए जल के छींटों की अखण्ड धारा छोड़ने लगे—मन्द-मन्द जलवृष्टि करने लगे।।२०९।।

जो वायु शीघ्र ही कल्पवृक्षों को हिला रही थी, जो आकाशगंगा की अत्यन्त शीतल तरङ्गों के उड़ाने में समर्थ थी और जो किनारे के वनों से पुष्पों का अपहरण कर रही थी ऐसी वायु मेरु पर्वत के चारों ओर घूम रही थी और ऐसी मालूम होती थी मानो उसकी प्रदक्षिणा ही कर रही हो।।२१०।।

देवों के हाथों से ताड़ित हुए दुन्दुभि बाजों का गम्भीर शब्द सुनाई दे रहा था और वह मानो जोर-जोर से यह कहता हुआ कल्याण की घोषणा ही कर रहा था कि जब त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभदेव का जन्ममहोत्सव तीनों लोकों में अनेक कल्याण उत्पन्न कर रहा है तब यहाँ अकल्याणों का रहना अनुचित है।।२११।।

सुरकुजकुसुमानां वृष्टिरापप्तदुच्चै
रमरकरविकीर्णा विश्वगाकृष्टभृङ्गा।
जिनजननसपर्यालोकनार्थं समन्ता—
न्नयनततिरिवाविर्भाविता स्वर्गलक्ष्म्या।।२१२।।

शार्दूलविक्रीडितम्

इत्थं यस्य सुरासुरैः प्रमुदितैर्जन्माभिषेकोत्सव-
श्चक्रे शक्रपुरस्सरैः सुरगिरो क्षीरार्णवस्याम्बुभिः।
नृत्यन्तीषु सुराङ्गनासु सलयं नानाविधैर्लास्यकैः
स श्रीमान् वृषभो जगत्त्रयगुरुर्जीयाज्जिनः पावनः।।२१३।।
जन्मानन्तरमेव यस्य मिलितैर्देवा सुराणां गणैः
नानायानविमानपत्तिनिवहव्यारुद्धरोदोऽङ्गणैः।
क्षीराब्धेः समुपाहृतैः शुचिजलैः कृत्वाभिषेकं विभोः
मेरोर्मूर्धनि जातकर्म विदधे सोऽव्याज्जिनो नोऽग्रिमः।।२१४।।
सद्यः संहृतमौष्ण्यमुष्णकिरणैरास्त्रेडितं शीकरैः
शैत्यं शीतकरैरुदूढमुडुभिर्वद्धोडुपैः क्रीडितम्।

उस समय देवों के हाथ से बिखरे हुए कल्पवृक्षों के फूलों की वर्षा बहुत ही ऊँचे से पड़ रही थी, सुगन्धि के कारण वह चारों ओर से भ्रमरों को खींच रही थी और ऐसी मालूम होती थी मानो भगवान् के जन्मकल्याणक की पूजा देखने के लिए स्वर्ग की लक्ष्मी ने चारों ओर अपने नेत्रों की पंक्ति ही प्रकट की हो।।२१२।।

इस प्रकार जिस समय अनेक देवांगनाएँ ताल सहित नाना प्रकार की नृत्यकला के साथ नृत्य कर रही थीं उस समय इन्द्रादि देव और धरणेन्द्रों ने हर्षित होकर मेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से जिनके जन्माभिषेक का उत्सव किया था वे परम पवित्र तथा तीनों लोकों के गुरु श्रीवृषभनाथ जिनेन्द्र सदा जयवन्त हों।।२१३।।

जन्म होने के अनन्तर ही नाना प्रकार के वाहन, विमान और पयादे आदि के द्वारा आकाश को रोककर इकट्ठे हुए देव और असुरों के समूह ने मेरु पर्वत के मस्तक पर लाए हुए क्षीरसागर के पवित्र जल से जिनका अभिषेक कर जन्मोत्सव किया था वे प्रथम जिनेन्द्र तुम सबकी रक्षा करें।।२१४।।

जिनके जन्माभिषेक के समय सूर्य ने शीघ्र ही अपनी उष्णता छोड़ दी थी, जल के छींटे बार-बार उछल रहे थे, चन्द्रमा ने शीतलता को धारण किया था, नक्षत्रों ने बँधी हुई छोटी-छोटी नौकाओं के समान जहाँ-तहाँ क्रीडा की थी और तैरते हुए चंचल ताराओं के

तारौधैस्तरलैस्तरद्भिरधिकं डिण्डीरपिण्डायितं
यस्मिन् मज्जनसंविधौ स जयताज्जैनो जगत्पावनः।।२१५।।
सानन्दं त्रिदशेश्वरैः सचकितं देवीभिरुत्पुष्करैः
सत्रासं सुरवारणैः प्रणिहितैरात्तादरं चारणैः।
साशङ्कं गगनेचरैः किमिदमित्यालोकितो यः स्फुरन्
मेरोर्मूर्द्ध्नि स नोऽवताज्जिनविभोर्जन्मोत्सवाम्भः प्लवः।।२१६।।

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसंग्रहे
भगवज्जन्माभिषेकवर्णनं नाम त्रयोदशं पर्व।।१३।।

समूह ने फेन के पिण्ड के समान शोभा धारण की थी वे जगत् को पवित्र करने वाले जिनेन्द्र भगवान् सदा जयशील हों।।२१५।।

मेरु पर्वत के मस्तक पर स्फुरायमान होता हुआ जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक का वह जलप्रवाह हम सबकी रक्षा करे जिसे कि इन्द्रों ने बड़े आनन्द से, देवियों ने आश्चर्य से, देवों के हाथियों ने सूँड़ ऊँची उठाकर बड़े भय से, चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने एकाग्रचित्त होकर बड़े आदर से और विद्याधरों ने 'यह क्या है' ऐसी शंका करते हुए देखा था।।२१६।।

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्री भगवज्जिनसेनाचार्य विरचित त्रिषष्टि-लक्षणमहापुराणसंग्रह में भगवान् के जन्माभिषेक का वर्णन करने वाला तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ।।१३।।

तीर्थंकर जन्माभिषेक महिमा

(हरिवंशपुराण)

अष्टत्रिंशः सर्गः

पृथिवीच्छन्दः

जिनेन्द्रपितरौ ततो धनपतिः सुरेन्द्राज्ञया
स्वभक्तिभरतोऽपि च स्वयमुपेत्य तीर्थोदकैः।
शुभैः सममिषिच्य तो सुरभिपारिजातोद्भवैः
सुगन्धवरभूषणैर्भुवनदुर्लभैः प्रार्चयत्।।१।।
पुरैव परिशोधिते विदितदिक्कुमारीगणैर्बभार
विमलोदरे प्रथमगर्भमुद्यत्प्रभम् ।
स्वबन्धुजनसिन्धुवृद्धिकरमस्तापोदयं
शिवाय जगतां शिवा शशिनमम्बरश्रीरिव।।२।।
चकार न वियोजितत्रिवलिभङ्गशोभामसौ न च
श्वसनबाधिताधरसुपल्लवां नालसाम् ।
स्तनस्तवकभारनम्रतनुमध्यसुस्त्रीलतां
नितान्तकृपयेव तां फलभरो न चावाधत।।३।।

तदनन्तर इन्द्र की आज्ञा और अपनी भक्ति के भार से कुबेर ने स्वयं आकर शुभ तीर्थजल से भगवान् के माता-पिता का अच्छी तरह अभिषेक किया और मनोज्ञ कल्पवृक्षों से उत्पन्न अन्यजन-दुर्लभ सुगन्ध और उत्तमोत्तम आभूषणों से उनकी पूजा की।।१।।

जिस प्रकार आकाश की लक्ष्मी अपने निर्मल उदर में चन्द्रमा को धारण करती है उसी प्रकार भगवान् की माता शिवादेवी ने प्रसिद्ध दिक्कुमारी देवियों के द्वारा पहले से ही शुद्ध किए गए अपने निर्मल उदर में जगत् के कल्याण के लिए सर्वप्रथम उस गर्भ को धारण किया जो उठती हुई प्रभा से युक्त था, अपने बन्धुजनरूपी समुद्र की वृद्धि को करने वाला था तथा सन्ताप के उदय को दूर करने वाला था।।२।।

उस गर्भरूपी फल के भार ने अत्यधिक दया से प्रेरित होकर ही मानो स्तनरूपी गुच्छों के भार से नम्रीभूत एवं पतली कमर वाली शिवादेवीरूपी लता को रंचमात्र भी बाधा नहीं पहुँचायी थी। न तो उसकी त्रिवलिरूपी तरंग की शोभा को नष्ट किया था, न श्वासोच्छ्वास से उसके अधररूपी पल्लव को बाधित किया था और न उसे आलस्य से युक्त ही होने दिया था।।३।।

निगूढनिजगर्भसंभवतनोरिव व्यक्तये
पयोधरभरो ययावतितरां पयःपूर्णताम् ।
तदुद्वहनगौरवादिव विशेषविस्तीर्णतां
जगाम जघनस्थली निविडमेखलाबन्धना।।४।।
मनो भुवनरक्षणे सकलतत्त्वसंवीक्षणे
वचोऽपि हितभाषणे निखिलसंशयोत्पेषणे।
वपुर्व्रतविभूषणे विनयपोषणं चोचितं
बभूव जिनवैभवादतितरां शिवायास्तदा।।५।।
महामृतरसाशनैः सुरवधूमिरापादितैरनन्तगुणकान्तिवीर्य
करणैः समास्वादितैः।
जिनेन्द्रजननीतनुस्तनुरपि प्रभाभिर्दिशो
दशापि कनकप्रभा विदधतीव विद्युद्बभौ।।६।।
करीन्द्रमकरस्फुरत्तुरगतुङ्गमीनावली
महारथसुयानपात्रनृपवाहिनीसंमुखैः।
विशद्भिरनुकूलगैः समभिवर्धितोऽद्धोर्मिभिः
समुद्रविजयोऽन्वहं पृथुसमुद्रलीलां वहन् ।।७।।

अपने अत्यन्त गूढ़ गर्भ में भगवान् के शरीर की जो उत्पत्ति हुई थी उसे प्रकट करने के लिए ही मानो शिवादेवी के स्तनों का भार अत्यधिक दूध से परिपूर्णता को प्राप्त हो गया था तथा मेखला के सघन बन्धन से युक्त उसकी नितम्बस्थली उस स्तन के भार को धारण करने के गौरव से ही मानो अत्यधिक विस्तृत हो गयी थी।।४।।

उस समय भगवान् के प्रभाव से शिवादेवी का मन संसार की रक्षा करने तथा समस्त तत्त्वों के अवलोकन करने में अभ्यस्त रहता था, वचन सब प्रकार के संशय को नष्ट करने वाले हितकारी भाषण में अभ्यस्त रहता था और शरीर व्रतरूपी आभूषण के धारण करने तथा विनय के पोषण करने में अभ्यस्त रहता था।।५।।

भगवान् की माता देवांगनाओं के द्वारा सम्पादित एवं अनन्तगुणी कान्ति और बल को बढ़ाने वाला अमृतमय आहार करती थीं इसलिए उनका शरीर कृश होने पर भी अपनी प्रभा से दशों दिशाओं को सुवर्ण जैसी कान्ति का धारक करता हुआ बिजली के समान सुशोभित हो रहा था।।६।।

हाथीरूपी मगरमच्छों, उछलते हुए उन्नत अश्वरूपी मीन-समूहों, बड़े-बड़े रथरूपी जहाजों, राजाओं की सेनारूपी नदियों और जहाँ-तहाँ प्रवेश करते हुए मित्रोंरूपी तरंगों

जिनेशजनकौ जगद्वलयवेलयाभ्यर्चितौ
परस्परविवर्धमानपृथुसंमदौ नित्यशः।
महेन्द्रवरशासनाभिरतदेवदेवीकृतप्रभूतिविभवान्वितौ
गमयतः स्म मासान्नव।।८।।
ततः कृतसुसंगमे निशि निशाकरे चित्रया
प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुभे।
असूत तनयं शिवा शिवदशुद्ध वैशाखज
त्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिणं हारिणम् ।।९।।
त्रिबोधशुचिचक्षुषा दशशताष्टसल्लक्षणैः
सुलक्षितसुनीलनीरजवपुर्वपुर्बिभ्रता।
जिनेन निजशोचिषा बहुमणीकृतं मण्डलं
प्रसूतिभवनोदरे मणिगणप्रदीपार्चिषाम् ।।१०।।
विपाण्डरपयोधरां दिवमखण्डचन्द्राननां
निशि स्फुरिततारकानिकरमण्डनां हारिणीम् ।

से प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुए राजा समुद्रविजय उस समय सचमुच ही विशाल समुद्र की शोभा को धारण करते हुए वृद्धिंगत हो रहे थे।।७।।

इस प्रकार जो जगद्वलयरूपी वेला से पूजित थे, परस्पर में जिनका विशाल हर्ष निरन्तर बढ़ रहा था और जो इन्द्र की आज्ञा में लीन देव-देवियों के द्वारा की हुई विभूति से सहित थे ऐसे भगवान् के माता-पिता ने गर्भ के नौ माह सानन्द व्यतीत किए।।८।।

तदनन्तर वैशाख शुक्ल त्रयोदशी की शुभ तिथि में रात्रि के समय जब चन्द्रमा का चित्रा नक्षत्र के साथ संयोग था और समस्त शुभ ग्रहों का समूह जब यथायोग्य उत्तम स्थानें पर स्थित था तब शिवादेवी ने समस्त जगत् को जीतने वाले अतिशय सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया।।९।।

जो तीन ज्ञानरूपी उज्ज्वल नेत्रों के धारक थे तथा एक हजार आठ लक्षणों से युक्त नील कमल के समान सुन्दर शरीर को धारण कर रहे थे ऐसे जिनबालक ने अपनी कान्ति के द्वारा प्रसूतिकागृह के भीतर व्याप्त मणिमय दीपकों के कान्तिसमूह को कई गुणा अधिक कर दिया था।।१०।

उस समय जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा का उदय होने पर जो धवल पयोधर—मेघों को धारण करने वाली थी (पक्ष में धवल स्तनों से युक्त थी) अखण्ड—पूर्ण चन्द्रमा ही जिसका मुख था, (पक्ष में पूर्ण चन्द्रमा के समान जिसका मुख था), देदीप्यमान ताराओं के समूह ही जिसके आभूषण थे, (पक्ष में देदीप्यमान ताराओं के समूह के समान

तरङ्गभुजपञ्जरोदरविवर्तिनीं स्वेच्छया
चुचुम्ब मदनाम्बुधिः सति जिनेन्द्रचन्द्रोदये।।११।।
गभीरगिरिराजनाभिकुलशैलकण्ठाकुल-
स्तनोच्छ्वलद्वाहिनीनिवहहारभाराधरा।
चचाल कृत्नर्तनेव मुदितात्र जम्बूमती
समुद्रवलयाम्बरा रणितवेदिकामेखला।।१२।।
अनुत्तरमुखोज्ज्वलः शिवपदोत्तमाङ्गस्तदा
नवानुदिशसद्धनुर्नववैमानकग्रीवकः।
सुकल्पवपुरन्तराधरजगत्कटीजङ्घक
स्त्रिलोकपुरुषोऽचलत्कटिकरो नटित्वा स्फुटम्।।१३।।
अभूद्भवनवासिनां जगति तारशङ्खस्वनो
ररा ट पटहः पटुर्झटिति भौमलोकेऽखिले।
रवेर्जगति सिंहनाद उरुघोषघण्टानदत्सु
कल्पभवने जिनप्रभववैभवाद्वै स्वयम्।।१४।।

जिसके आभूषण थे), जो अत्यन्त सुन्दरी थी (पक्ष में हार से सुशोभित थी) और जो तरंगरूपी भुजपंजर के मध्य में वर्तमान थी ऐसी आकाशरूपी स्त्री का मदनरूपी महासागर ने अपनी इच्छानुसार चुम्बन किया था।।११।।

उस समय जो सुमेरुरूपी गम्भीर नाभि से युक्त थी, कुलाचलरूपी कण्ठ और स्तनों से सहित थी, बहती हुई नदियों के समूहरूपी हार के भार को धारण करने वाली थी, समुद्र का घेरा ही जिसका वस्त्र था तथा शब्दायमान वेदिका ही जिसकी मेखला थी, ऐसी जम्बूद्वीप की भूमि चल-विचल हो गयी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो हर्ष के वशीभूत हो नृत्य ही कर रही हो।।१२।।

जो अनुत्तर विमानरूपी मुख से उज्ज्वल था, मोक्षरूपी मस्तक से सहित था, नौ अनुदिशरूपी ठोड़ी से युक्त था, नौ ग्रैवेयकरूपी ग्रीवा को धारण करने वाला था, स्वर्गरूपी शरीर से सहित था तथा मध्यम लोकरूपी कमर और अधोलोकरूपी जंघाओं से युक्त था ऐसा तीन लोकरूपी पुरुष उस समय चंचल हो उठा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमर पर हाथ रखकर नृत्य ही कर रहा हो।।१३।।

उस समय जिनेन्द्र भगवान् के जन्म के प्रभाव से भवनवासी देवों के लोक में अपने आप शंखों का जोरदार शब्द होने लगा। समस्त व्यन्तर देवों के लोक में शीघ्र ही जोरदार पटह शब्द होने लगे। सूर्यलोक में सिंहनाद होने लगा और कल्पवासी देवों के भवनों में विशाल शब्द करने वाले घण्टा बज उठे।।१४।।

जगत्त्रितयवासिनश्चलितमौलिसिंहासनास् -
ततोऽसुरसुराधिपाः प्रणिहितावधिस्वेक्षणाः।
प्रबुध्य जिनजन्म जातपुरुसंमदाः संपदा
प्रचेलुरिह भारतं प्रति चतुर्णिकायामरैः।।१५।।
विशुद्धतमदृष्टयो मुकुटकोटिसंघट्टित-
स्फुरत्कटकरत्नरश्मिखचिताखिलाशामुखाः।
प्रणेमुरहमिन्द्रदेवनिवहास्तु तत्र स्थिताः
पदान्यभिसमेत्य सप्त हरिविष्टरेभ्यो जिनम् ।।१६।।
क्षितेरसुरनागविद्युदनलानिलद्वीपसत् -
सुपर्णसुमहोदधिस्तनितदिक्कुमाराभिधाः।
समुद्ययुरितस्ततो भवनवासिनो भास्वरास् -
तदाविदधतो दिशो दश दशप्रकारामराः।।१७।।
सुकिंपुरुषकिन्नरामरमहोरगा राक्षसाः
पिशाचसुरभूरिभूतवरयक्षगन्धर्वकाः।
मनोहरणदक्षगीतबहुनृत्ययुक्ताङ्गनाः
समीयुरिह मध्यलोकरतयोऽष्टधा व्यन्तराः।।१८।।

तदनन्तर जिनके मुकुट और सिंहासन कम्पायमान हो रहे थे, जिन्होंने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्र को प्रयुक्त किया था और उसके द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के जन्म को जानकर जिन्हें अत्यधिक हर्ष उत्पन्न हुआ था, ऐसे तीनों लोकों में रहने वाले सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र चतुर्णिकाय के देवों को साथ ले बड़ी विभूति से भरतक्षेत्र की ओर चल पड़े।।१५।।

हाथ जोड़कर मस्तक से लगाते समय मुकुटों के अग्रभाग से टकाराए हुए कटकों के रत्नों की किरणों से जिन्होंने समस्त दिशाओं के अग्रभाग व्याप्त कर दिए थे ऐसे अत्यन्त शुद्ध सम्यग्दर्शन के धारक अहमिन्द्र देव यद्यपि अपने-अपने ही निवासस्थानों में स्थित रहे थे तथापि उन्होंने सिंहासन से सात कदम सामने आकर जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार किया था।।१६।।

असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, द्वीपकुमार, महोदधिकुमार, स्तनितकुमार और उदधिकुमार ये दश प्रकार के भवनवासी देव दशों दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए जहाँ-तहाँ पृथ्वी से ऊपर आने लगे।।१७।।

जिनकी स्त्रियाँ मन को हरण करने में दक्ष, गीत तथा नाना प्रकार के नृत्यों से युक्त थीं, ऐसे किंपुरुष, किन्नर, महोरग, राक्षस, पिशाच, भूत, यक्ष और गन्धर्व ये मध्यलोक में विशिष्ट प्रीति के रखने वाले आठ प्रकार के व्यन्तर देव चारों ओर से आने लगे।।१८।।

गणश्च शुचिशोचिषां प्रथितपञ्चधाज्योतिषां
ग्रहर्क्षशशिभास्करप्रततताराकाख्यापुषाम्।
बभौ युगपदापतन्निजविमानकेभ्योऽधिकं
विधातुमिव चोद्यतो जगदिहापरं ज्योतिषाम्।।१९।।
यथास्वमपि सप्तभिः प्रथमकल्पनाथादयो-
ऽप्यनीकनिवहैर्वृता युगपदच्युतेन्द्रोत्तराः।
प्रतिस्वमपि सप्तभिः सकलकल्पजैः षोडश
प्रमोदवशवर्तिनः समभिजग्मुरिन्द्राः सुरैः।।२०।।
अनेकमुखदत्तसत्कमलखण्डपत्रावली
सुरूपसुरसुन्दरीललितनाटकोद्भासिनम् ।
हिमाद्रिमिव जङ्गमं निजवधूभिरैरावतं
करीन्द्रमधिरूढवानभिरराज सौधर्मपः।।२१।।
अनीकमथ यौवजं रचितसप्तकक्षान्तरं
गृहीतवलयाकृतिप्रकृतिपौरुषाधिष्ठितम्।
परीत्य कुलिशायुधं कुलिशपूर्वशस्त्राटवी-
निरुद्धगगनान्तरं भृशमशोभत त्रैदशम्।।२२।।

उज्ज्वल किरणों से युक्त ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारा नाम को धारण करने वाले पाँच प्रकार के प्रसिद्ध ज्योतिषी देवों का समूह एक साथ अपने-अपने विमानों से यहाँ आता हुआ ऐसा सुशोभित होने लगा मानो वह पृथ्वी पर एक दूसरा ही ज्योतिष लोक बनाने के लिए उद्यत हुआ हो।।१९।।

जो यथायोग्य अपनी-अपनी सात प्रकार की सेनाओं के सहित थे, ऐसे प्रथम स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक के सोलह इन्द्र आनन्द के वशीभूत हो समस्त स्वर्गों के देवों के साथ यहाँ आ पहुँचे।।२०।।

सौधर्मेन्द्र अपनी स्त्रियों के साथ उस ऐरावत नामक गजराज पर बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था, जो चलते-फिरते हिमालय के समान जान पड़ता था तथा अनेक मुखों के भीतर दाँतों पर विद्यमान कमलसमूह की कलिकाओं पर नृत्य करती हुई देवांगनाओं के सुन्दर नृत्य से सुशोभित था।।२१।।

इन्द्र को चारों ओर से घेरे हुए देवों की वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने सात कक्षाओं का विभाग किया था, जो गोल आकार के सहित थी, स्वाभाविक पुरुषार्थ से युक्त थी तथा वज्र आदि शस्त्रों के वन से जिसने आकाश के अन्तराल को रोक रखा था।।२२।।

जवेन लघु लङ्घ्यद्द्भुतसमीरणं हेषितप्रयोजि
तवियोजितत्रिभुवनान्तरालं तथा।
वृहद्बहिरवर्तत प्रविततं हयानीकमप्यरं
गगनवारिधेरधितरङ्गरङ्गायितम्।।२३।।
सुमुग्धमुखकोशकैर्नयनपुण्डरीकैर्निजै-
र्ललत्ककुदवालधिश्रुतिसुगात्रसास्नापुटैः।
सुवर्णखुरशृङ्गकैः प्रतिवृषं वृषानीकमप्युवाह
परितः स्थितं विपुलकान्तिमिन्दुप्रभाम्।।२४।।
विभिन्नमपि सप्तधा स्वयमभेद्यमप्यद्रिभि-
र्नभोवलयसागरे त्रिदशयानपात्रायितम् ।
प्रभाविजितविस्फुरद्रविरथं रथानीकमप्य-
भादतिमनोहरं वलयवत्परिक्षेपकम्।।२५।।
विकर्णघनशीकरैः करिभिरूर्ध्वलीलाकरैः
प्रवृत्तगुरुगर्जितैर्गुरुतरैरिवाम्भोधरैः।
महामरुदधिष्ठितैः सुघटितं गजानीकमप्य-
नेकरचनान्तरं व्यतनुत श्रियं प्रावृषः।।२६।।

तदनन्तर घोड़ों की बहुत बड़ी विराट् सेना थी जो अपने वेग से शीघ्रगामी वायु को शीघ्र ही जीत रही थी। जो अपनी हिनहिनाहट से तीन लोक के अन्तराल को संयुक्त तथा वियुक्त कर रही थी और आकाशरूपी समुद्र की उठती हुई तरंगों के समूह के समान जान पड़ती थी।।२३।।

तदनन्तर बैलों की वह सेना चारों ओर खड़ी थी जो कि सुन्दर मुख, सुन्दर अण्डकोश, नयन कमल, मनोहर कांदौल, पूँछ, शब्द, सुन्दर शरीर, सास्ना, सुवर्णमय खुर और सींगों से युक्त थी तथा अत्यधिक कान्ति से युक्त चन्द्रमा की प्रभा को धारण कर रही थी।।२४।।

तदनन्तर रथों की वह सेना भी सुशोभित हो रही थी जो स्वयं सात प्रकार से विभिन्न होने पर भी पर्वतों से अभेद्य थी, आकाशरूपी सागर में जो देवों के यानपात्र के समान जान पड़ती थी, प्रभा से जिसने सूर्य के देदीप्यमान रथ को जीत लिया था, जो अत्यन्त मनोहर थी और जिसका घेरा वलय के समान सुशोभित था।।२५।।

तत्पश्चात् जो चारों ओर से जल के छींटों की वर्षा कर रहे थे, जिनके शुण्डादण्ड ऊपर की ओर उठे हुए थे, जो बहुत भारी गर्जना कर रहे थे, जो आकार में बहुत भारी थे एवं जो बड़े-बड़े देवों से अधिष्ठित थे ऐसे मेघों की समानता धारण करने वाले हाथियों से रचित, अनेक प्रकार की रचनाओं से युक्त हाथियों की सेना भी वर्षा ऋतु की शोभा

स्वरैरपि च सप्तभिर्मधुरमूर्छनाकोमलैः
सवीणवरवंशतालरवमिश्रितैराश्रितैः।
प्रपूर्णभुवनोदरं बहिरतोऽप्यनीकं बभौ
युवत्यमरबन्धुरं धृतिकरं तु गन्धर्वजम्।।२७।।
समस्तरसपुष्टिकं वलयहारिगात्रोत्करै-
र्मनःकुसुममञ्जरीरमरभूरुहामाहरत्।
प्रनृत्यदुरुनर्तकीमयमनीकमप्यम्बरे
नितम्बभरमन्थरं निचितमाविरासीत्तथा।।२८।।
सहस्रगुणितोदिता चतुरशीतिरेषु स्फुटं
प्रमाणमपि सप्तसु प्रथमसप्तकक्षास्वतः।
परं द्विगुणमेतदेव सकलेषु कक्षान्तरे-
ष्वनीकवलयेष्वियं क्रमभिदासमाप्तेः स्थितिः।।२९।।
यथायथमनीकिनः सकलनाकलोकाधिपा
जिनेन्द्रजननाभिषेककरणाय यावद्वियत् ।
वितत्य पुरमाव्रजन्ति मुदितास्तु तावद्दिशां
कुमार्य उपकुर्वते निखिलजातकर्मादृताः।।३०।।

विस्तृत कर रही थी।।२६।।

हाथियों की सेना के बाद गन्धर्वों की वह सेना सुशोभित हो रही थी जिसने मधुर मूर्छना से कोमल वीणा, उत्कृष्ट बाँसुरी और ताल के शब्द से मिश्रित सातों प्रकार के आश्रित स्वरों से जगत् के मध्यभाग को पूर्ण कर दिया था, जो देव-देवांगनाओं से सुशोभित थी एवं सबको आनन्द उत्पन्न करने वाली थी।।२७।।

गन्धर्वों की सेना के बाद उत्कृष्ट नृत्य करने वाली नर्तकियों की वह सेना भी आकाश में प्रकट हुई थी जो कि नितम्बों के भार से मन्द-मन्द चल रही थी, समस्त रसों को पुष्ट करने वाली थी और वलयों से सुशोभित अपने शरीर से देवरूपी वृक्षों के मनरूपी पुष्पमंजरी को ग्रहण कर रही थी।।२८।।

प्रत्येक सेना में सात-सात कक्षाएँ थीं। उनमें से प्रथम कक्षा में चौरासी हजार घोड़े, बैल आदि थे फिर दूसरी-तीसरी आदि कक्षाओं में क्रम से दूने-दूने होते गए थे।।२९।।

अपनी-अपनी सेनाओं से युक्त समस्त इन्द्र भगवान् का जन्माभिषेक करने के लिए आकाश में व्याप्त हो जब तक सूर्यपुर आते हैं तब तक प्रसन्नता से युक्त एवं आदर से भरी दिक्कुमारी देवियाँ भगवान् का समस्त जातकर्म करने लगीं।।३०।।

तथाहि विजया स्मृता जगति बैजयन्ती परा
परोक्तिरपराजिता प्रवदिता जयन्ती वरा।
तथैव सह नन्दया भवति चापरानन्दया
सनन्द्यभिधवर्धना हृदयनन्दिनन्दोत्तरा।।३१।।
कुचानिव निजानिमा विगलदङ्गशृङ्गारस-
द्रसेनभरितान् भृशं विपुलतुङ्गभृङ्गारकान्।
समू हुरभिरामकानमलहारमारोज्ज्वला
ज्वलन्मणिविभूषणश्रवणकुण्डलोद्भासिताः।।३२।।
तथैव सयशोधरा प्रथितसुप्रबुद्धामरी
सुकीर्तिरपि सुस्थिता प्रणिधिरत्र लक्ष्मीमती।
विचित्रगुणचित्रया सह वसुंधरा चाप्यमू
गृहीतमणिदर्पणा दिश इवेन्दुमत्यो वभुः।।३३।।
इला नवमिकासुरासहितपीतपद्मावती
तथैव पृथ्वी परप्रवरकाञ्चना चन्द्रिका।
प्रभास्फुटिततारकाभरणभूषिता भास्वराः
सचन्द्ररजनीनिभा धृतसितातपत्रा बभुः।।३४।।
श्रिया च धृतिराशया च वरवारुणी पुण्डरीकिणी
स्फुरदलम्बुसा च सह मिश्रकेशी हिया।

देवियों में निर्मल हारों के धारण करने से सुशोभित एवं चमकते हुए मणियों के आभूषण और कानों के कुण्डलों से विभूषित, जगत्प्रसिद्ध विजया, वैजयन्ती, अपराजिता, जयन्ती, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना और हृदय को आनन्दित करने वाली नन्दोत्तरा नाम की देवियाँ अपने स्तनों के समान स्थूल तथा अंग से विगलित होते हुए शृंगार रस के समान निर्मल जल से भरी हुई बड़ी ऊँची झारियाँ लिए हुए थीं।।३१-३२।।

यशोधरा, सुप्रसिद्धा, सुकीर्ति, सुस्थिता, प्रणिधि, लक्ष्मीमती, विचित्र गुणों से युक्त चित्रा और वसुन्धरा ये देवियाँ मणिमय दर्पण लेकर खड़ी थीं और चन्द्रमा से युक्त दिशाओं के समान सुशोभित हो रही थीं।।३३।।

इला, नवमिका, सुरा, पीता, पद्मावती, पृथ्वी, प्रवरकांचना और चन्द्रिका नाम की देवियाँ प्रभा से देदीप्यमान ताराओं के समान आभूषणों से सुशोभित तथा देदीप्यमान थीं। ये देवियाँ भगवान् की माता पर सफेद छत्र लगाए हुए थीं और चन्द्रमा के सहित रात्रियों के समान जान पड़ती थीं।।३४।।

श्री, धृति, आशा, वारुणी, पुण्डरीकिणी, अलम्बुसा, मिश्रकेशी और ह्री आदि

सचामरकरा इमा बभुरुदारफेनावली-
तरङ्गकुलसंकुला इव कुलापगाः संगताः।।३५।।
कनत्कनकचित्रया सहितया पुनश्चित्रया
त्रिलोकसुरविश्रुतत्रिशिरसा च सूत्रामणिः।
कुमार्य इव विद्युतो विलसितैर्जिनस्यान्तिके
तमोनुद इवाबभुर्जलधरस्य विद्युल्लताः।।३६।।
सहैव रुचकप्रभा रुचकया तदाद्याभया
परा च रुचकोज्ज्वला सकलविद्युदग्रेसराः।
दिशां च विजयादयो युवतयश्चतस्रो वरा
जिनस्य विदधुः परं सविधि जातकर्माश्रिताः।।३७।।
चतुर्विधसुरासुरा लघु समेत्य तावत्परं
कुबेरजनिताद्भुतप्रथमशोभमुच्चैर्ध्वजम्।
परीत्य जिनभक्तितस्त्रिदशनाथलोकश्रियं
विजेतुमिव चोद्यतं ददृशुरादृताः सेन्द्रकाः।।३८।।

देवियाँ हाथों पर चामर लिए खड़ी थीं तथा अधिक फेनावली और तरंगों से युक्त आयी हुई कुलनदियों—गंगा आदि नदियों के समान सुशोभित हो रही थीं।।३५।।

देदीप्यमान कनकचित्रा, चित्रा, तीन लोक के देवों में प्रसिद्ध त्रिशिरा और सूत्रामणि, ये विद्युत्कुमारी देवियाँ उस समय जिनेन्द्र भगवान् के समीप अपनी चेष्टाओं से ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो मेघ के समीप अन्धकार को नष्ट करने वाली बिजलीरूपी लताएँ ही हों।।३६।।

उस समय समस्त विद्युत्कुमारियों में प्रधान रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला तथा दिक्कुमारियों में प्रधान विजय आदि चार देवियाँ विधिपूर्वक भगवान् का जातकर्म कर रही थीं।।३७।।

भगवान् के जन्मोत्सव के पूर्व ही कुबेर ने सूर्यपुर की अद्भुत शोभा बना रखी थी। उसके महलों पर बड़ी-बड़ी, ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रही थीं तथा वह इन्द्रलोक की शोभा को जीतने के लिए उद्यत सरीखा जान पड़ता था। अपने-अपने इन्द्रों सहित चारों निकायों के सुर और असुर आदर के साथ शीघ्र ही आकर जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से उस नगर की तीन प्रदक्षिणाएँ दे उसकी शोभा देखने लगे।।३८।।

प्रविश्य नगरं ततः शतमखः स्वयं सत्सखः
शिवास्पदसमीपगः स्थितिविदादिदेशादृताम्।
शचीं शुचिमचापलां समुपनेतुमीशं शिशुं
प्रसूतिगृहमाविशन्निति तदा बभौ सादरा।।३९।।
विकृत्य सुरमायया शिशुमिहापरं निद्रया
प्रयोज्य जिनमातरं प्रणतिपूर्वकं यत्नतः।
प्रगृह्य मृदुपाणिना शिशुमदादसौ स्वामिने
प्रणम्य शिरसा ददावमरराट् कराभ्यां जिनम् ।।४०।।
जितेन्दुमुखचन्द्रकं विजितपुण्डरीकेक्षणं
विशेषविजितासितोत्पलवनश्रियं तं श्रिया।
निरीक्ष्य जितपद्मपाणिचरणं सहस्रेक्षणः
सहस्रगणनेक्षणैरपि ययौ न तृप्तिं तदा।।४१।।
विधाय स सुरद्विपस्फटिकभूभृतो मस्तके
जिनेन्द्रशिशुमिन्द्रनीलमणितुङ्गचूड़ामणिम् ।

तदनन्तर सज्जनों का सखा और मर्यादा को जानने वाला इन्द्र नगर में प्रवेश कर शिवादेवी के महल के समीप खड़ा हो गया और वहीं से उसने आदर से युक्त, पवित्र एवं चंचलता से रहित इन्द्राणी को जात बालक के लाने का आदेश दिया। पति की आज्ञानुसार इन्द्राणी ने प्रसूतिका गृह में प्रवेश किया। उस समय आदर से भरी इन्द्राणी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी।।३९।।

वहाँ उसने यत्नपूर्वक जिनमाता को प्रणाम कर मायामयी निद्रा में सुला दिया तथा देवमाया से एक दूसरा बालक बनाकर उनके समीप लिटा दिया। तदनन्तर इन्द्राणी ने कोमल हाथों से जिनबालक को उठाकर अपने स्वामी—इन्द्र के लिए दे दिया और देवों के राजा इन्द्र ने शिर से जिनबालक को प्रणाम कर दोनों हाथों से उन्हें ले लिया।।४०।।

जिन्होंने अपने मुखरूपी चन्द्रमा के द्वारा चन्द्रमा को जीत लिया था, नेत्रों से पुण्डीक—सफेद कमल को जीत लिया था, शरीर की कान्ति से नीलकमलों के वन की शोभा को प्रमुख रूप से पराजित कर दिया था और अपने हाथों तथा पैरों से कमलों को पराभूत कर दिया था ऐसे जिनेन्द्र बालक को उस समय इन्द्र एक हजार नेत्रों से भी देखकर तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ—उसकी देखने की उत्कण्ठा ज्यों की त्यों बनी रही।।४१।।

वह इन्द्र जिसके मस्तक पर इन्द्रनीलमणि का ऊँचा चूड़ामणि सुशोभित हो रहा था, ऐसे जिनबालक को ऐरावत हाथीरूपी स्फटिकमय पर्वत के मस्तक पर विराजमान कर चला। उस समय वह इन्द्र चंचल चामर और छत्रों से अतिशय शोभायमान था और

चचाल चल चामरातपनिवारणोच्चैरुचिश्-
चलोर्मिकुलसंकुलो जलनिधिर्यथा फेनिलः।।४२।।
सुरेभवदनत्रिके दशगुणे द्वयोश्राष्ट ते
रदाः प्रतिरदं सरः सरसि पद्मिनी तत्र च।
भवन्ति मुखसंख्यया सहितपद्मपत्राण्यपि
प्रशस्तरसभाविता प्रतिदलं नटत्यप्सराः।।४३।।
तथाविधविभूतिभिः समुपगम्य मेरुं सुराः
परीत्य पृथु पाण्डुकाख्यवनखण्डमभ्येत्य ते।
जिनेन्द्रमतिरुद्रपाण्डुकशिलातले कोमले
सुपञ्चशतकार्मुकोञ्चहरिविष्टरेऽतिष्ठपन् ।।४४।।
ततश्च धृतपूजनोपकरणेषु देवाङ्गनागणेषु
परितः स्थितेष्वभिनवोत्सवानन्दिषु।
नटत्सु कुतपोत्कटप्रकटनाटकेषु
स्फुटप्रकृष्टरसभावहावलयरञ्जितस्वर्गिषु।।४५।।

उनसे ऐसा जान पड़ता था मानों चंचल तरंगों के समूह से युक्त फेन से भरा समुद्र ही चला जा रहा हो।।४२।।

ऐरावत हाथी के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत थे, प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस पत्र थे और एक-एक पत्र पर उत्तम रस से भरी हुई एक-एक अप्सरा नृत्य कर रही थी।।४३।।

उस प्रकार की लोकोत्तर विभूति के साथ देव लोग मेरु पर्वत के समीप पहुँचे तथा उसकी परिक्रमा देकर पाण्डुक नामक विशाल वनखण्ड में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने विशाल पाण्डुकशिला के ऊपर जो पाँच सौ धनुष ऊँचा सिंहासन है उस पर जिनबालक को विराजमान किया।।४४।।

तदनन्तर पूजा के उपकरणों को धारण करने वाले एवं नवीन उत्सव से आनन्दित देवांगनाओं के समूह जब चारों ओर खड़े थे, स्पष्ट तथा श्रेष्ठ रस, भाव, हाव और लय से देवों को अनुरंजित करने वाले श्रेष्ठ नृत्यकारों के समूह जब नृत्य कर रहे थे, सुमेरु पर्वत की सुविशाल गुफाओं से गूँजने वाली प्रतिध्वनि से वृद्धिंगत, दिशाओं के अन्तराल में फैलने वाले, जिनेन्द्र भगवान् के गुणों के समान अत्यन्त प्रकट एवं कानों को सुख देने वाले बजते हुए नगाड़ों और शंखों के शब्द तथा

रटत्पटहशङ्खशब्दहरिनादभेरीरवै
र्गिरीन्द्रसुबृहद्गुहाप्रतिनिनादसंवर्धितैः।
दिगन्तरविसर्पिभिर्जिनगुणैरिव प्रस्फुटै-
रशेषभुवनोदरेश्रुतिसुखावहैः पूरिते।।४६।।
नभस्तलमितस्ततः स्थगयति स्फुरत्सौरभे
विचित्रपटवासपधूपपटले सुपुष्पोत्करे।
सुगन्धयति बन्धुरे परमगन्धहृद्यो दिशां
मुखानि मुखपाण्डुकप्रभवमातरिश्वन्यलम्।।४७।।
गृहीतबहुविग्रहः सुरपरिग्रहो वासवः
समारभत भक्तितो जिनमहाभिषेकं स्वयम्।
विधातुममराहृतैस्तु मणिहेमकुम्भच्युतैः
पयोमयपयोनिधेः शुभपयोभिरुद्गन्धिभिः।।४८।।
(चतुर्भिः कलापकम्)
बहुत्रिदशपङ्क्तिभिः प्रमदपूरितामिर्नभः
स्फुरन्मणिगणोज्ज्वलत्कलशपाणिभिः सर्वतः।
सुमेरुगिरिपञ्चमाम्बुनिधिमध्यमध्यासितं
रराज बहुरज्जुभिस्तदिव नीयमानं तदा।।४९।।

सिंहनाद और भेरियों की ध्वनियों से जब संसार का मध्यभाग परिपूर्ण हो रहा था, प्रकट होती हुई सुगन्धि से युक्त, नाना प्रकार के पटवास, धूपों के समूह और उत्तमोत्तम पुष्पों के समूह जब इधर-उधर आकाश तल को व्याप्त कर रहे थे और मुखरूपी पाण्डुक वन से उत्पन्न उत्कृष्ट गन्ध से हृदय को प्रिय लगने वाली सुन्दर वायु जब दिशाओं के मुख को अत्यन्त सुगन्धित कर रही थी तब अनेक शरीरों को धारण करने वाले इन्द्र ने देवों के साथ भक्तिपूर्वक, देवों के द्वारा लाए हुए, मणिमय और सुवर्णमय कुम्भों से च्युत, अत्यन्त सुगन्धित क्षीरसागर के शुभ जल से जिनेन्द्र भगवान् का स्वयं महाभिषेक करना शुरू किया।।४५ से ४८।।

उस समय सुमेरु पर्वत और क्षीरसागर के मध्य आकाश में हर्ष से भरी एवं देदीप्यमान मणियों के समूह से उज्ज्वल कलश हाथ में लिए देवों की पंक्तियाँ सब ओर खड़ी थीं, उनसे उस समय वह आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत-सी रस्सियों से बाँधकर कहीं ले जाया जा रहा हो।।४९।।

गृहाण कलशं लघु क्षिप नयाशु संधारय।
प्रभुं च मम संमुखं त्वमिति कर्णरिम्यारवैः।
करात्करमितस्ततः सुरगणस्य कुम्भावली
श्रिया श्रयति पाण्डुकं वनमिवोरुहंसावली।।५०।।
सुवर्णमणिरत्नरौप्यमयकुम्भकाल्यो बभुः
प्रवेगमरुतां वशा रविशशाङ्कमाला यथा।
सुपक्षपुटदीप्तिभिः खचितदिङ्मुखाः खे
रयोत्पतद्गरुडहंसपङ्क्तय इव ययानेकशः।।५१।।
शताध्वरभुजोद्धृतैर्जलधरैरिवोद्गर्जितैः
सहस्रगणनैर्घटैः शुचिपयोभिरावर्जितैः।
जिनोऽभिषवमाप्नुवन् धवलमद्रिराजं व्यधा-
द्दधातिधवलात्मतामधवलो हि शुद्धाश्रयात्।।५२।।
सतोपमपरेऽपि ते निखिलकल्पनाथादयो
यथेष्टमभिषेचनं विदधुरम्बुभिर्निर्मलैः।

उस समय वहाँ 'कलश लो, जल्दी दो और तुम भगवान् को शीघ्र ही मेरे सम्मुख धारण करो' इस प्रकार कानों के लिए प्रिय शब्द हो रहे थे तथा वह कलशों की पंक्ति देवसमूह के एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती हुई शोभापूर्वक पाण्डुकवन में ऐसी प्रवेश कर रही थी मानो बड़े-बड़े हंसों की पंक्ति ही प्रवेश कर रही हो।।५०।।

आकाश में वेगशाली देवों के वशीभूत (हाथों में स्थित) सुवर्ण, मणि, रत्न और चाँदी से निर्मित कलशों की पंक्तियाँ आकाश में ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुन्दर पंखों की कान्ति से दिशाओं को व्याप्त करती हुई वेग से उड़ने वाले गरुड़ और हंसों की अनेक पंक्तियाँ ही हों।।५१।।

इन्द्र की भुजाओं के द्वारा उठाए हुए, मेघों के समान गर्जना करने वाले एवं उज्ज्वल जल से भरे हुए हजार कलशों से अभिषेक को प्राप्त होने वाले भगवान् ने मेरु पर्वत को सफेद कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि शुद्ध पदार्थ के आश्रय से अशुद्ध भी शुद्धता को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ —भगवान् के अभिषेक जल से मेरु पर्वत सफेद-सफेद दिखने लगा।।५२।।

जिनशासन की प्राप्ति से जिनके प्रशस्त राग का उदय हो रहा था, जिनके शरीर में रोमांच प्रकट हुए थे और जिनका संसाररूपी सागर अत्यन्त अल्प रह गया था ऐसे अन्य

जिनस्य जिनशासनाधिगमशस्तरागोदयाः
प्रकाशिततनूरुहास्तनुतरात्मजन्माब्धयः।।५३।।
ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्य शच्यादयः
सुगन्धितनुपूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम्।
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः
पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः।।५४।।
कूलमणिभूषणस्त्रगनुलेपनोद्भासितं
प्रयोज्य शुभपर्वतं विभुमरिष्टनेम्याख्यया।
सुरासुरगणस्ततः स्तुतिभिरित्थमिन्द्रादयः
परीत्य परितुष्टुवुर्जिनमिनं सुपृथ्वीश्रियाम्।।५५।।

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ
जन्माभिषेकवर्णनो नामाष्टत्रिंशः सर्गः ।।३८।।

समस्त स्वर्गों के इन्द्रों ने भी बड़े सन्तोष के साथ इच्छानुसार निर्मल जल से जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक किया था।।५३।।

तदनन्तर कोमल हाथों को धारण करने वाली शची आदि इन्द्राणियों ने आकर सुगन्धित द्रव्यों से भगवान् को उद्वर्तन—उबटन किया और अपने ही स्तनों के समान सुशोभित एक साथ उठाए हुए, शुभ जल से परिपूर्ण कलशों के द्वारा उनका अभिषेक किया।।५४।।

तदनन्तर इन्द्र आदि समस्त सुर और असुरों के समूह ने उत्तम वस्त्र, मणिमय आभूषण, माला तथा विलेपन से सुशोभित, कल्याण के पर्वत एवं अतिशय विशाल लक्ष्मी के स्वामी श्री जिनेन्द्रदेव का अरिष्टनेमि नाम रखकर उनकी प्रदक्षिणा दी और उसके बाद नाना प्रकार की स्तुतियों से उनका स्तवन किया।।५५।।

इस प्रकार अरिष्टनेमि पुराण के संग्रह से युक्त जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश पुराण में भगवान् के जन्माभिषेक का वर्णन करने वाला अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।३८।।

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

सकलश्रुतमत्यवधिप्रविकासिविशुद्ध विलासनिनिद्र विशिष्ट-
विलोचनदृष्टिविदृष्टसमस्तचराचरतत्त्वजगस्त्रितय।
त्रितयात्मकदर्शनबोधचरित्रविनिर्मलरत्नविराजितपूर्व-
भवोग्रतपोयुतषोडशकारणसंचिततीर्थकरप्रकृते।।१।।
प्रकृतेः स्थितितोऽनुभवाच्च विशिष्टतराद्भुतपुण्यमहोदय-
मारुतवेगविचालितदेवनिकायकुलाचलसेवितपादयुग।
युगमुख्य मुखाम्बुजदर्शनतृप्तिविवर्जितभव्यमधुव्रतधीर-
तरस्तवनध्वनिवृंहितदुन्दुभिनादनिवेदितशुद्धयशः।।२।।
यशसा धवलीकृतजन्मपवित्रितभारतवर्ष महाहरिवंश-
महोदयशैलशिखामणिबालदिवाकरदीप्तिजितार्कवपुः।
वपुषाधिककान्तिभृताजितपूर्णशशाङ्क, विभो! हरिनीलमणि-
द्युतिमण्डलमण्डितदिङ्मुखमण्डल नेमिजिनेन्द्र! नमो भवते।।३।।

इन्द्र नेमि जिनेन्द्र की इस प्रकार स्तुति करने लगा—हे प्रभो! आपने समस्त श्रुतज्ञान, मतिज्ञान और अवधिज्ञान से विकसित, शुद्ध चेष्टाओं के धारक, जागरुक एवं विशिष्ट पदार्थों को दिखलाने वाली दृष्टि के द्वारा समस्त चराचर पदार्थों से युक्त तीनों जगत् को अच्छी तरह देख लिया है। आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के भेद से त्रिविधता को प्राप्त निर्मल रत्नों से सुशोभित पूर्वभव सम्बन्धी उग्र तप से युक्त सोलहकारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृति का संचय किया है।।१।।

उसी तीर्थंकर प्रकृति को स्थिति तथा अनुभाग बन्ध के कारण अत्यन्त विशिष्ट एवं अद्भुत पुण्य के महोदयरूपी वायु के वेग से आपने देवसमूहरूपी कुलाचलों को विचलित किया है। उन्होंने आप के चरण युगल की सेवा की है। आप युग में मुख्य हैं तथा आपके मुखकमल के देखने सम्बन्धी तृप्ति से रहित भव्य जीवरूपी भ्रमरों के अत्यधिक स्तवनों की ध्वनि से वृद्धिंगत दुन्दुभियों के शब्द से आपका शुद्ध यश प्रकट हो रहा है।।२।।

हे नाथ ! आपने यश से शुक्लीकृत जन्म से समस्त भारतवर्ष को पवित्र किया है। अत्यन्त श्रेष्ठ हरिवंशरूप विशाल उदयाचल के शिखामणिस्वरूप बालदिनकर जैसी कान्ति से आपने सूर्य के शरीर को जीत लिया है। हे विभो ! आपने अधिक कान्ति को धारण करने वाले शरीर के द्वारा पूर्णचन्द्र को जीत लिया है एवं इन्द्रनीलमणि जैसी

भवतेह भुवां त्रितये भवता गुरुणा परमेश्वर विश्वजनीन
महेच्छधिया प्रतिपादितमप्रतिमप्रतिमारहितम्।
हितमुक्तिपथं प्रथितं विधिवत् प्रतिपद्य विधाय तपो विविधं
विधिना प्रविधूय कुकर्ममलं सकलं भुवि भव्यजनः प्रणतः।।४।।
प्रणतप्रिय! संप्रति जन्मजरामरणमयभीममहाभवदुःख-
समुद्रमपारमतीत्य समेष्यति मोक्षमशेषजगच्छिखरम्।
शिखराग्रसमग्रगुणाश्रयसिद्धमहापरमेष्ठिमहोपचयं
प्रवदन्ति च यं मुनयः परमं पदमेकमिहाक्षरमात्महितम्।।५।।
महितं महतां महदात्मगतं सततोदयमन्तविवर्जितमूर्जित-
सत्त्वसुखं प्रतिलभ्यमलभ्यमभव्यजनैः खलु यत्र सुखम्।
सुखमत्र यदीश्वरविश्वजगत्प्रभुताप्रतिवद्धमपि त्रिदशे-
न्द्रनरेन्द्रपुरस्सरदेवमनुष्यविशेषमहाभ्युदयप्रभवम्।।६।।

कान्ति के समूह से आपने समस्त दिशाओं के मुखमण्डल को सुशोभित कर दिया है इसलिए हे नेमि जिनेन्द्र ! आपको नमस्कार हो।।३।।

हे परमेश्वर! हे विश्वजनीन! हे अप्रतिम—हे अनुपम! आप तीनों लोकों के गुरु हैं एवं उत्कट बुद्धि के धारक हैं। यहाँ उत्पन्न होते ही आपने अनुपम, प्रसिद्ध एवं मोक्ष का जो हितकारी मार्ग बतलाया है उसे स्वीकार कर तथा नाना प्रकार का तपकर भव्य जीव समस्त पापकर्मरूपी मल को विधिपूर्वक नष्ट कर पृथ्वी में वन्दनीय होंगे।।४।।

हे प्रणतप्रिय ! हे भक्तवत्सल ! अब आप जन्म-जरा-मरणरूपी रोगों से भयंकर संसाररूपी महादुःख के अपार सागर को पार कर मोक्षस्वरूप, समस्त लोक के उस शिखर को प्राप्त होंगे जहाँ पर उत्कृष्ट सीमा को प्राप्त समस्त गुणों के आधारभूत सिद्ध भगवान् रूप महापरमेष्ठी विराजमान रहते हैं और जिसे मुनिगण उत्कृष्ट, अद्वितीय, अविनाशी एवं आत्महितकारी पद कहते हैं।।५।।

जहाँ का उत्तम, महान् , आत्मगत, निरन्तर उदय में रहने वाला, अन्तरहित और अनन्त बल सम्पन्न सुख महापुरुषों को ही प्राप्त हो सकता है अभव्य जीवों को नहीं। हे स्वामिन् ! आप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव वाले पदार्थों के निरूपण करने में निपुण शासन का उपदेश करने वाले हैं। इस संसार में समस्त जगत् की प्रभुता से

प्रभवप्रलयस्थितिधर्मपदार्थनिरूपणनैपुणशासन शासन
तावकशासनसेवनयैव भविष्यति नान्यमताश्रयतः।
श्रयतामिति निश्चयमेत्य भवन्ति भवत्यविभूति मतिप्रवणाः
सततं तनुभृन्निवहा भुवि येऽत्र त एव जिनेन्द्र कृतित्वमिताः।।७।।
प्रियसर्वहितार्थवचोविभवं विभवं सुरमीकृतदिग्विवरं
वरसंहतिसंस्थितिरूपयुतं युतसर्वसुलक्षणपङ्क्तिरुचिम्।
रुचिमत्पयसा समदेहरसं रसभावविदं मलमुक्ततनुं
तनुजस्विदिहीनमनन्ततया ततया संहितं भुवि वीर्यतया।।८।।

तोटकवृत्तम्

यतयात्मधिया जितनात्मभुवं भुवमव्यतरां सुखसस्यभृताम् ।
भृतविश्व! भवन्तमनन्तगुणं गुणकाङ्क्षितया वयमीश नताः।।९।।

सम्बद्ध एवं इन्द्र, नरेन्द्र आदि देव और मनुष्यों के विशेष महान् अभ्युदयों का कारणभूत जो सुख है वह भी आपके शासन की सेवा से ही प्राप्त होगा, अन्य मतों के आश्रय से नहीं। इसलिए सब आपका ही आश्रय लेवें, इस प्रकार आप के विषय में निश्चय—दृढ़ श्रद्धा को प्राप्त कर जो प्राणी इस पृथ्वी में निर्ग्रन्थ बुद्धि के धारण करने में प्रवीण होते हैं—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं। हे जिनेन्द्र ! वे ही प्राणी इस संसार में कृतकृत्यता को प्राप्त होते हैं।।६-७।।

हे भगवान् ! आप प्रिय एवं सर्वहितकारी वचनों के वैभव से सहित हैं, संसार का अन्त करने वाले हैं, आपने दिशाओं के अन्तराल को सुगन्धित कर दिया है, आप उत्कृष्ट संहनन, उत्कृष्ट संस्थान और उत्कृष्ट रूप से युक्त हैं, आप समस्त लक्षणों से सुशोभित हैं, आपके शरीर का रस रुधिर दूध के समान है, आप रस और भाव को जानने वाले हैं, आपका शरीर मल से रहित है, पसीना से रहित है, आप पृथ्वी में व्याप्त अनन्त बल से सहित हैं।।८।।

आपने संयमरूप आत्मबुद्धि से कामदेव को जीत लिया है। आप सुखरूपी सस्य से परिपूर्ण एवं अत्यन्त रक्षणीय भूमि की रक्षा करने वाले हैं। हे सबके रक्षक भगवन्! इस तरह आप अनन्त गुणों के धारक हैं। हे नाथ ! आपके गुणों की अभिलाषा से हम आपके प्रति नम्रीभूत हैं—आपको नमस्कार करते हैं।।९।।

दोधकवृत्तम्

योजनभूरिसहस्रनभोगं भोगकरत्वमिवाचलनाथम्।
नाथ! परं स्नपनासनमिद्धमिद्धमतिः कुरुते क उदारः।।१०।।
ईदृशमीश विभुत्वममानं मानधनामरमानवमान्यम्।
मान्यतमोऽन्यतमो भुवि ना को नाकभवोऽपि जिनैति यथा त्वम्।।११।।
शैशव एव जनातिगसत्त्वः सत्त्वहितो भुवनत्रयनूतः।
नूतनभक्तिभरेण नतानां तानवमानससौख्यकरस्त्वम्।।१२।।
कामकरीन्द्रमृगेन्द्र नमस्ते क्रोधमहाहिविराज नमस्ते।
मानमहीधरवज्र नमस्ते लोभमहावनदाव नमस्ते।।१३।।
ईश्वरताधरधीर नमस्ते विष्णुतया युत देव नमस्ते।
अर्हदचिन्त्यपदेश नमस्ते ब्रह्मपदप्रतिबन्ध नमस्ते।।१४।।

हे नाथ ! यह अनेकों हजार योजन ऊँचा पर्वतों का राजा सुमेरु पर्वत भी मानो आपके योग का साधन हो गया। सो आपके सिवाय प्रचण्ड बुद्धि को धारण करने वाला ऐसा कौन महापुरुष है जो इसे श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान स्नानपीठ बना सकने को समर्थ है।।१०।।

हे ईश! यह आपका ऐश्वर्य अपरिमित है, मानरूपी धन के धारक बड़े-बड़े देव तथा मनुष्यों के द्वारा माननीय है। हे जिनेन्द्र! इस संसार में स्वर्ग में उत्पन्न होने वाला भी ऐसा कौन दूसरा माननीय पुरुष है जो आपके समान ऐश्वर्य को प्राप्त कर सके।।११।।

हे भगवन्! बाल्यकाल में भी आप लोकोत्तर पराक्रम के धारक हैं, प्राणियों के हितकारक हैं, तीनों लोकों के द्वारा स्तुत्य हैं तथा आप नूतन भक्ति से भार से नम्रीभूत मनुष्यों के लिए शारीरिक और मानसिक सुख के करने वाले हैं।।१२।।

हे प्रभो! आप कामरूपी गजराज को नष्ट करने के लिए सिंह के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप क्रोधरूपी महानाग को वश में करने के लिए पक्षिराज गरुड़ के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो। आप मानरूपी पर्वत को चकनाचूर करने के लिए वज्र के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और आप लोभरूपी महावन को भस्म करने के लिए दावानल के समान हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।१३।।

आप ईश्वरता के धारण करने में धीर-वीर हैं अतः आपको नमस्कार हो। हे देव! आप विष्णुता से युक्त हैं अतः आपको नमस्कार हो। आप अर्हन्तरूप अचिन्त्य पद के स्वामी हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप ब्रह्म पद को प्राप्त करने वाले हैं अतः आपको नमस्कार हो।।१४।।

सत्यवचोनिवहैः सुरसंघा इत्यमिनुत्य जिनं प्रणिपत्य।
तारकमुग्रभवाद्वरमेकं याचितवन्त इनं वरबोधिम्।।१५।।

वृत्तानुगन्धिगद्यम्

अथ मथितमहामृताम्भोधिसंशुद्धपीयूषपिण्डातिपानातिदोषाच्छिराजीर्यमाणेष्विवोद्गीर्यमाणेषु तत्खण्डखण्डेषु, शंङ्खेषु खे खेदमुक्तैः सुरैस्तोषपोषादनीषन्मनीषैर्भृशं पूर्यमाणेषु तद्यथा वाद्यमानोरुगम्भीर-भेरीमृदङ्गानकादिप्रभूततातातोद्यशब्देषु संवृत्तजैनेन्द्रजन्माभिषेकोत्सवोद्घोषणायेव निश्शेषलोकान्तादिकचक्रवालान्तराक्रान्तिमभ्युत्थितेषु प्रनृत्यत्सु विद्याधरव्रातदेवाङ्गनातुसंगीनादाभिरामाति-शृङ्गारहास्याद्भुतोद्यद्रसोदारवागङ्गसत्त्वस्फुटाहार्यहार्यात्मदिव्याभिनेयप्रवृत्ताप्सरोवृन्द-बन्धेषु, सौधर्मकल्पाधिपः संभ्रमाद्विभ्रमभ्राजमानोद्यदैरावतस्कन्धमारोप्य संवृत्यधीरं

इस प्रकार सत्य वचनों के समूह से देवों ने भगवान् की स्तुति कर उन्हें प्रणाम किया तथा भयंकर संसार से पार करने वाले भगवान् से उन्होंने यही एक वर माँगा कि हे भगवन् ! हम लोगों को उत्तम बोधि की प्राप्ति हो।।१५।।

अथानन्तर खेद रहित एवं विशाल बुद्धि के धारक देव सन्तोष की अधिकता से आकाश में जिन शंखों को अधिक मात्रा में फूँक रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अमृत के महासागर के मथने से जो अत्यन्त शुद्ध अमृत का पिण्ड निकला था उसे अधिक मात्रा में पी जाने के दोष से देव लोग चिरकाल तक पचा नहीं सके इसलिए उन्होंने उगल दिया हो उसी पीयूष-पिण्ड के टुकड़े हों। शंखों के शब्दों के साथ-साथ बजाए जाने वाले अत्यधिक गम्भीर ध्वनि से युक्त भेरी, मृदंग तथा पटह आदि को एवं अधिक मात्रा में बजने वाली बाँसुरी और वीणा के शब्द, 'श्री जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव हो चुका है' इसकी घोषणा करने के लिए ही मानो जब समस्त लोक के अन्त तक एवं समस्त दिशाओं के अन्तराल में व्याप्त होने के लिए उठ रहे थे और जब विद्याधरों के समूह एवं देवांगनाओं के उन्नत संगीतमय शब्दों से सुन्दर श्रेष्ठ शृंगार, हास्य और अद्भुत रस से परिपूर्ण वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य इन चार प्रकार के अपने सुन्दर दिव्य अभिनेयों के प्रकट करने में प्रवृत्त अप्सराओं के समूह सुन्दर नृत्य कर रहे थे। तब सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र, सम्भ्रमपूर्वक विभ्रमों से शोभायमान उठते हुए ऐरावत हाथी के कन्धे पर धीर-वीर जिनेन्द्र को विराजमान कर सुमेरु पर्वत से उस शौर्यपुर की ओर चला जो शूरवीरता के पर्वत एवं सिंहों के समान बलवान् यादववंशी राजाओं से अधिष्ठित था। उस समय जिनेन्द्र भगवान् के ऊपर सफेद छत्र

जिनेन्द्रं सितच्छत्रशोभं चलच्चामरालीभिरावीज्यमानं प्रगीताप्सरोलोकसंगीयमा-नातिशुद्धात्मकीर्तिं चचालाचलेन्द्रादनीकैरशेषैरशेषं नभोभागमापूर्य शौर्यशैलैरलं यादवेन्द्रैर्मृगेन्द्रैरिवाध्यासितं प्रथितविबुधनिकायैः पथि प्रस्थितैः सप्रमोदैः प्रणामप्रणुतिप्रगीतिप्रयोग-प्रवृत्तैर्यथायोगमभिनन्द्यमानो महानन्दमापादयन् पादपद्मोपसेवासनाथस्य नाथस्त्रिलोकामराधीशलोकस्य लोकातिवर्तिप्रवृत्तं परम्पारमैश्वर्यमत्यद्भुतं संदधानः, शिवानन्दनो, नन्द वर्धस्व जीवेति वेत्यादि पुण्याभिधानैस्तदा स्तूयमानः कुलाद्रिप्रसूतिप्रभूताच्छतोयापगावी-चिसंतानसंसर्गशीतात्मना भोगभूभूरुहाणां विचित्रप्रसूनप्रतानप्रसंगेन सौगन्ध्यमत्यद्भुतं बिभ्रता संभ्रमेणातिदूराच्च खेदापनोदार्थमभ्युत्थितेनेव मित्रेण गात्रानुकूलेन मन्दानिलेन प्रभुस्तीर्थकृत्कोमलाङ्गः

सुशोभित हो रहा था, चंचल चमरों की पंक्तियाँ उन पर ढोरी जा रही थीं और प्रकृष्ट गीतों से युक्त अप्सराओं के समूह उनकी अत्यन्त विशुद्ध कीर्ति गा रहे थे। सौधर्मेन्द्र ने उस समय समस्त आकाश को सब प्रकार की सेनाओं से पूर्ण कर रखा था। मार्ग में चलते हुए, हर्ष से परिपूर्ण, प्रणाम, स्तुति तथा संगीत के प्रयोग में लीन प्रसिद्ध देवों के समूह भगवान् का यथायोग्य अभिनन्दन कर रहे थे। त्रिलोकसम्बन्धी इन्द्रों का समूह भगवान् के चरण कमलों की सेवा में तत्पर था और भगवान् उसे महान् आनन्द प्राप्त करा रहे थे। इस प्रकार जो लोकोत्तर एवं अत्यन्त आश्चर्यकारी परम ऐश्वर्य को धारण कर रहे थे, शिवादेवी के पुत्र थे, 'समृद्धि को प्राप्त होओ' 'बढ़ते रहो' 'जीवित रहो' इत्यादि पुण्य शब्दों से उस समय जिनकी स्तुति हो रही थी, कुलाचलों से उत्पन्न अत्यधिक स्वच्छ जल से युक्त महानदियों की तरंगों के संसर्ग से शीतल, भोगभूमि सम्बन्धी कल्पवृक्षों के रंग-बिरंगे पुष्प-समूह के संयोग से आश्चर्यकारी सुगन्धि को धारण करने वाले तथा खेद दूर करने के लिए सम्भ्रमपूर्वक बहुत दूर से सम्मुख आए हुए मित्र के समान, शरीर के अनुकूल मन्द-मन्द समीर से जिनका आलिंगन हो रहा था, जो प्रभु थे, तीर्थंकर थे, कोमल शरीर के धारक थे, जो मन को हरण करने वाले तथा बाल्य अवस्था के अनुरूप वस्त्रों से सुशोभित विशिष्ट आभूषणों से युक्त थे, देदीप्यमान मालाओं से उज्ज्वल थे, बाल कल्पवृक्ष की उत्कृष्ट शोभा को तिरस्कृत करने वाले थे, मेघ के समान श्याममूर्ति के धारक थे, सफेद एवं उत्कृष्ट गन्ध से युक्त उत्तम चन्दन से लिप्त थे और इसके कारण जो उदित होती हुई सघन चाँदनी से आलिंगित प्रगाढ़ इन्द्रनीलमणि के पर्वत की शोभा को धारण कर रहे थे और देवों की सेना से आवृत थे ऐसे नेमिजिनेन्द्र शीघ्र ही उत्तर दिशा को उल्लंघ कर अपने उस शौर्यपुर नगर में जा पहुँचे जहाँ की

समालिङ्ग्यमानो मनोहारिवाल्यानुरूपाम्बरोद्भासिभूषा-विशेषोद्धमाल्योज्ज्वलो बालकल्पद्रुमोद्दामशोभातिशायी घनश्याममूर्तिः सितोद्गन्धिसच्चन्दनेनोपदिग्धः स्फुरत्सान्द्रचन्द्रातपाश्लिष्टरुन्द्रेन्द्रनीलाद्रिलक्ष्मीधरो देवसेनावृतः शीघ्रमुल्लङ्घ्य काष्ठामुदीचीमधिष्ठानमात्मीयमुच्चैर्ध्वजव्रातवादित्रधीर-ध्वनिव्याप्तदिक्चक्रवालाम्बरं दिव्यगन्धाम्बुवर्षाभिषिक्तापतत्पुष्पवर्षोपरुद्धोरुरथ्यापथं श्रीनिधानं विधानेन माङ्गल्यसंसंगिना चारुसौर्यं पुरं प्रापदैश्वर्यमाश्चर्यभूतं भुवि प्रकटं विश्वलोकस्य कुर्वन्नसौ नेमिनाथः। जिनशिशुमशिशुश्रियं शौरिसौर्यप्रजाशुंभदम्भोजिनीबालमास्वन्त-मुत्तुङ्गमातङ्गराजोत्तमाङ्गस्थमादाय तं मातुरुत्संगमानीय शक्रः स्वयंविक्रियाशक्तियुक्तः सहस्रं भुजां भासुरांसस्थलश्रीपुषां स प्रकृत्य प्रसार्योरुसौन्दर्य संदर्भगर्भामरस्त्रीसहस्राणि

दिशाओं का अन्तराल और आकाश ऊँची-ऊँची ध्वजाओं के समूह तथा वादित्रों की गम्भीर ध्वनि से व्याप्त था, जहाँ के बड़े-बड़े मार्ग, दिव्य और सुगन्धित जल की वृष्टि से सींचे जाकर फूलों की पड़ती हुई वर्षा से रुके हुए थे, जो लक्ष्मी का भण्डार था तथा मंगलाचारमय विधि-विधान से सुन्दर था, उस समय भगवान् नेमिनाथ पृथ्वी पर समस्त लोगों को आश्चर्य में डालने वाले आश्चर्य को प्रकट कर रहे थे।

बालक होने पर भी जिनकी शोभा बालकों जैसी नहीं थी अर्थात् जो प्रकृति से वयस्क के समान सुन्दर थे। जो कृष्ण तथा सौर्यपुर की प्रजारूपी शोभायमान कमलिनी को विकसित करने के लिए बालसूर्य थे और जो अतिशय ऊँचे ऐरावत—गजराज के मस्तक पर विराजमान थे ऐसे जिनबालकों को लेकर इन्द्र ने उन्हें माता की गोद में दिया। तदनन्तर विक्रिया शक्ति से युक्त इन्द्र ने स्वयं देदीप्यमान कन्धों की शोभा को पुष्ट करने वाली हजार भुजाएँ बनाकर उन्हें फैलाया तथा उन पर अत्यधिक सौन्दर्य से युक्त नाना प्रकार का नृत्य करने वाली हजारों देवियों को धारण किया। तत्पश्चात् इस लीला को जब सामने बैठे हुए यादव लोग बड़े हर्ष से देख रहे थे तथा अपने हृदय में जब इसे समस्त पृथ्वी के स्वामित्व के लाभ से भी अधिक समझ रहे थे तब राज्य में दक्ष इन्द्र ने महानन्द नाम का वह उत्तम नाटक किया जिसने सबके नेत्रों को विस्तृत कर दिया था अर्थात् जिसे सब टकटकी लगाकर देख रहे थे। उत्सवपूर्वक प्रारम्भ किए हुए उत्तम ताण्डव नृत्य की अखण्ड शोभा के प्रयोग से सहित था, नाना प्रकार के वादित्रों की जातियों के समूह से जिसमें अभिनेय अंश वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे, जो भौंहों के क्षोभ की लीला से सहित था, दिङ्मण्डल के भेद से सहित था, पृथ्वी के प्रताप से सहित था और नाना रसों के कारण जिसमें उदार भाव प्रकट हो रहा था।

चित्रं प्रनृत्यन्ति विभ्रद्धुजेष्वग्रतो यादवानां मुदा पश्यतां विश्वकाश्यप्यधीशत्वलाभादपि प्राज्यलाभं हृदि ध्यायतां स्फारिताक्षं क्षणारब्धसत्ताण्ड-वाखण्डशोभाप्रयोगान्वितं वाद्यजातिप्रतानप्रवृद्धाभिनेयं सभ्रूक्षोमलीलं सदिक्चक्रभेदं सभूमिप्रपातं महानन्दसन्नाटकं राज्यदक्षो ननाट स्फुटीभूतनानारसोदारभावं ततोऽर्हद्गुरुं देवराजः प्रणम्य प्रपूज्यान्यमर्त्यैरनर्घ्यैरलभ्यैर्विभूषादिभिर्भूषयित्वा जिनस्या मृताहारमुद्यत्कराङ्गुष्ठके दक्षिणे-न्यस्य रक्षानिमित्तं वयस्यान् कुमारान् सुराणां सुरेन्द्रः कुमारस्य सम्यग्निरूप्याप्रमत्तं कुबेरं वयोभेदकालर्तुयोगं विभोः क्षेमयोग्यं विधेयं समस्तं त्वयेति स्थिरं ज्ञापयित्वा समापृच्छय जैनौ गुरू तावनुज्ञां ततः प्राप्यसंप्राप्तलाभः कृतार्थं निजं मन्यमानो यथायातमन्यैरशेषैः सुरेन्द्रैश्चतुर्भेददेवानुगैर्यातवान् सिद्धयात्रस्ततो दिक्कुमार्योऽपि संवृत्तकार्याः समासाद्य तामार्यपुत्रीं सपुत्रीं शिवां संप्रणम्य प्रहृष्टाः प्रजग्मुर्निजस्थानदेशान्

तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् के माता-पिता को प्रणाम किया, उनकी पूजा की, अन्य मनुष्यों के लिए दुष्प्राप्य अमूल्य आभूषण आदि से उन्हें विभूषित किया, रक्षा के निमित्त जिनेन्द्र के दाहिने हाथ के अँगूठे में अमृतमय मुख्य आहार निक्षिप्त किया। क्रीडा के लिए भगवान् की समान अवस्था को धारण करने वाले देवकुमारों को उनके पास नियुक्त किया, कुबेर को यह आज्ञा दी कि तुम भगवान की अवस्था, काल और ऋतु के अनुकूल उनके कल्याण के योग्य समस्त व्यवस्था करना। इस प्रकार इन्द्र यह आज्ञा देकर भगवान् के माता-पिता से पूछकर तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने आपको कृतकृत्य मानता हुआ चार निकाय के देवों से अनुगत समस्त इन्द्रों के साथ जैसा आया था वैसा चला गया। इन्द्र की यात्रा सफल हुई।

तदनन्तर अपना-अपना कार्य पूरा कर दिक्कुमारी देवियों ने आर्यपुत्री, जिनबालक सहित माता शिवादेवी के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे प्रकृष्ट हर्ष से युक्त अपने शरीर की प्रभाओं से दशों दिशाओं को देदीप्यमान करती हुई अपने-अपने स्थानों पर चली गयीं। इधर गुणसमूहरूपी किरणों के समूह से समस्त जगत् को आनन्दित करने वाले, बालक होने पर भी वृद्ध जैसी क्रिया से युक्त बन्धुवर्ग तथा देवों के द्वारा लालित नेमिजिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए लक्ष्मी से सुशोभित होने लगे।

गौतम स्वामी कहते हैं कि वह स्तवन उन नेमिजिनेन्द्र के जन्माभिषेक से सम्बन्ध रखने वाला है जिनके सातिशय प्रभाव ने तीनों लोकों को व्याप्त कर रखा है, जो पाप को दूर करने वाले हैं, एक पुण्य का ही मार्ग बताने वाले हैं, संसार में सारभूत हैं, मोक्ष के

दिशस्ता दश द्योतयन्त्यः शरीरप्रमाभिर्जगन्नेमिचन्द्रोऽपि शुभ्रैर्गुणग्रामसान्द्रांशुजालैः समाह्लादयन् बालभावेऽप्यबालक्रियो लालितो बन्धुवर्गामरैर्वर्द्धमानो रराज श्रिया।

स्तवनमिदमरिष्टनेमीश्वरस्येष्टजन्माभिषेकाभिसंबन्धमाक्रान्तलोकत्रयातिप्रभावस्य पापापनोदस्य पुण्यैकमार्गस्य संसारसारस्य मोक्षोपकण्ठस्थ भव्यप्रजानां प्रमोदस्य कर्तुः प्रमादस्य हर्तुर्धर्मस्योपनेतुर्मुदा श्रूयमाणस्य स्मर्यमाणस्य च संकीर्त्यमानस्य संकीर्तनं पठ्यमानं समाकर्ण्यमानं सदा चिन्त्यमानं सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररत्नत्रयस्याभिसंपत्करं चैत्तशारीरसौख्यप्रदं शान्तिकं पौष्टिकं तुष्टिसंपत्तिसंपादि साक्षादिहामुत्र चानेककल्याणसंप्राप्तिहेतोः प्रपुण्यास्रवस्य स्वयं कारणं वारणं सर्वपापास्रवाणां सहस्रस्य विध्वंसकरणं दारुणस्यापि पूर्वत्र सर्वत्र चानेहसि स्नेहमोहादिभावेन संचितस्यैनसः। स्तोत्रमुख्यं जिनेन्द्रे विधेयादिदं भक्तिभारं परम् ।

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ जन्माभिषेके
इन्द्रस्तुतिवर्णनो नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः।। ३९।।

निकट हैं, भव्य जीवों को हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं, प्रमाद को हरने वाले हैं, धर्म का उपहार देने वाले हैं, सब लोग बड़े हर्ष से जिनका नाम श्रवण करते हैं, जिनका स्मरण करते हैं और जिनका अच्छी तरह कीर्तन करते हैं। पढ़ा गया, सुना गया और सदा चिन्तवन किया गया वह स्तोत्र इस लोक में साक्षात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी सम्पत्ति को करता है, मानसिक और शारीरिक सुख प्रदान करता है, शान्ति करता है, पुष्टि करता है, तुष्टि और सम्पत्ति को सम्पन्न करता है तथा परलोक में अनेक कल्याणों की प्राप्ति में कारणभूत उत्कृष्ट पुण्यास्रव का स्वयं कारण है, समस्त पाप कर्मों के हजारों प्रकार के आस्रवों का निवारण करता है और पूर्वभव में सर्वदा स्नेह तथा मोह आदि भावों से संचित भयंकर से भयंकर पापों का नाश करता है। यह मुख्य स्तोत्र जिनेन्द्र भगवान् में सातिशय भक्ति उत्पन्न करे।

इस प्रकार अरिष्टनेमिपुराण के संग्रह से युक्त, जिनसेनाचार्य रचित हरिवंश
पुराण में जन्माभिषेक के समय इन्द्र द्वारा कृत स्तुति का वर्णन करने
वाला उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।।३९।।

चतुर्दशं पर्व

अथाभिषेकनिर्वृत्तौ शची देवी जगद्गुरोः।
प्रसाधनविधौ यत्नमकरोत् कृतकौतुका[1]।।१।।
तस्याभिषिक्तमात्रस्य दधतः पावनीं तनुम् ।
साङ्गलग्नान्ममार्जाम्भःकणान् स्वच्छामलांशुकैः।।२।।
स्वासन्नापाङ्गसंक्रान्तसितच्छायं विभोर्मुखम्।
प्रमृष्टमपि सामार्जीद् भूयो जलकणास्थया।।३।।
गन्धैः सुगन्धिभिः सान्द्रैरिन्द्राणी गात्रमीशितुः।
अन्वलिम्पत लिम्पद्भिरिवामोदैस्त्रिविष्टपम् ।।४।।
गन्धेनामोदिना भर्त्तुः शरीरसहजन्मना।
गन्धास्ते न्यक्कृता एव सौगन्ध्येनापि संश्रिताः।।५।।
तिलकं च ललाटेऽस्य शची चक्रे किलादरात् ।
जगतां तिलकस्तेन किमलंक्रियते विभुः।।६।।

अथानन्तर, जब अभिषेक की विधि समाप्त हो चुकी तब इन्द्राणी देवी ने हर्ष के साथ जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव को अलंकार पहनाने का प्रयत्न किया।।१।।

जिनका अभिषेक किया जा चुका है ऐसे पवित्र शरीर को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव के शरीर में लगे हुए जलकणों को इन्द्राणी ने स्वच्छ एवं निर्मल वस्त्र से पोंछा।।२।।

भगवान् के मुख पर, अपने निकटवर्ती कटाक्षों की जो सफेद छाया पड़ रही थी उसे इन्द्राणी जलकण समझती थी अतः पोंछे हुए मुख को भी वह बार-बार पोंछ रही थी।।३।।

अपनी सुगन्धि से स्वर्ग अथवा तीनों लोकों को लिप्त करने वाले अतिशय सुगन्धित गाढ़े सुगन्ध द्रव्यों से उसने भगवान् के शरीर पर विलेपन किया था।।४।।

यद्यपि वे सुगन्ध द्रव्य उत्कृष्ट सुगन्धि से सहित थे तथापि भगवान् के शरीर की स्वाभाविक तथा दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्ध ने उन्हें तिरस्कृत कर दिया था।।५।।

इन्द्राणी ने बड़े आदर से भगवान् के ललाट पर तिलक लगाया परन्तु जगत् के तिलकस्वरूप भगवान् क्या उस तिलक से शोभायमान हुए थे ?।।६।।

१. आदिपुराण पर्व-१४, पृ ३०४ से ३२४ तक।

मन्दारमालयोत्तंस मिन्द्राणी विदधे विभोः।
तयालंकृतमूर्द्धासौ कीर्त्येव व्यरुचद् भृशम्।।७।।
जगच्चूडामणेरस्य मूर्ध्नि चूडामणिं न्यधात्।
सतां मूर्धाभिषिक्तस्य पौलोमी भक्तिनिर्भरा।।८।।
अनञ्जिजतासिते भर्त्तुर्लोचने सान्द्रपक्ष्मणी।
पुनरञ्जनसंस्कारमाचार इति लम्भिते।।९।।
कर्णावविद्धसच्छिद्रौ कुण्डलाभ्यां विरेजतुः।
कान्तिदीप्ती मुखे द्रष्टुमिन्दुर्कार्काभ्यामिवाश्रितौ।।१०।।
हारिणा मणिहारेण कण्ठशोभा महत्यभूत्।
मुक्तिश्रीकण्ठिकादाम चारुणा त्रिजगत्पतेः।।११।।
बाह्वोर्युगं च केयूरकटकाङ्गदभूषितम्।
तस्य कल्पाङ्घ्रिपस्येव विटपद्वयमावभौ।।१२।।
रेजे मणिमयं दाम किङ्किणीभिर्विराजितम्।
कटीतटेऽस्य कल्पाग प्रारोहश्रियमुद्वहत्।।१३।।

इन्द्राणी ने भगवान् के मस्तक पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला से बना हुआ मुकुट धारण किया था। उन मालाओं से अलंकृतमस्तक होकर भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो कीर्ति से ही अलंकृत किए गए हों।।७।।

यद्यपि भगवान् स्वयं जगत् के चूड़ामणि थे और सज्जनों में सबसे मुख्य थे तथापि इन्द्राणी ने भक्ति से निर्भर होकर उनके मस्तक पर चूड़ामणि रत्न रखा था।।८।।

यद्यपि भगवान् के सघन बरौनी वाले दोनों नेत्र अंजन लगाए बिना ही श्यामवर्ण थे तथापि इन्द्राणी ने नियोग मात्र समझकर उनके नेत्रों में अंजन का संस्कार किया था।।९।।

भगवान् के दोनों कान बिना वेधन किए ही छिद्र सहित थे, इन्द्राणी ने उनमें मणिमय कुण्डल पहनाए थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवान् के मुख की कान्ति और दीप्ति को देखने के लिए सूर्य और चन्द्रमा ही उनके पास पहुँचे हों।।१०।।

मोक्षलक्ष्मी के गले के हार के समान अतिशय सुन्दर और मनोहर मणियों के हार से त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभदेव के कण्ठ की शोभा बहुत भारी हो गयी थी।।११।।

बाजूबन्द, कड़ा, अनन्त (अणत) आदि से शोभायमान उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी मालूम होती थीं मानो कल्पवृक्ष की दो शाखाएँ ही हों।।१२।।

भगवान् के कटिप्रदेश में छोटी-छोटी घण्टियों (बोरों) से सुशोभित मणिमयी करधनी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो कल्पवृक्ष के अंकुर ही हों।।१३।।

पादौ गोमुखनिर्भासै र्मणिभिस्तस्य रेजनुः।
वाचालितौ सरस्वत्या कृतसेवाविवादरात्।।१४।।
लक्ष्म्याः पुञ्ज इवोद्भूतो धाम्नां राशिरिवोच्छिखः।
भाग्यानामिव संपात स्तदाभाद् भूषितो विभुः।।१५।।
सौन्दर्यस्येव संदोहः सौभाग्यस्येव संनिधिः।
गुणानामिव संवासः सालंकारो विभुर्वभौ।।१६।।
निसर्गरुचिरं भर्त्तुर्वपुर्भ्रेजे सभूषणम्।
सालंकारं कवेः काव्यमिव सुश्लिष्टबन्धनम्।।१७।।
प्रत्यङ्गमिति विन्यस्तैः पौलोम्या मणिभूषणैः।
स रेजे कल्पशाखीव शाखोल्लासिविभूषणः।।१८।।
इति प्रसाध्य तं देवमिन्द्रोत्संगगतं शची।
स्वयं विस्मयमायासीत् पश्यन्ती रूपसंपदम् ।।१९।।

गोमुख के आकार के चमकीले मणियों से शब्दायमान उनके दोनों चरण ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो सरस्वती देवी ही आदरसहित उनकी सेवा कर रही हो।।१४।।

उस समय अनेक आभूषणों से शोभायमान भगवान् ऐसे जान पड़ते थे मानो लक्ष्मी का पुंज ही प्रकट हुआ हो, ऊँची शिखा वाली रत्नों की राशि ही हो अथवा भोग्य वस्तुओं का समूह ही हो।।१५।।

अथवा अलंकारसहित भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो सौन्दर्य का समूह ही हो, सौभाग्य का खजाना ही हो अथवा गुणों का निवासस्थान ही हो।।१६।।

स्वभाव से सुन्दर तथा संगठित भगवान् का शरीर अलंकारों से युक्त होने पर ऐसा शोभायमान होने लगा था मानो उपमा, रूपक आदि अलंकारों से युक्त तथा सुन्दर रचना से सहित किसी कवि का काव्य ही हो।।१७।।

इस प्रकार इन्द्राणी के द्वारा प्रत्येक अंग में धारण किए हुए मणिमय आभूषणों से वे भगवान् उस कल्पवृक्ष के समान शोभायमान हो रहे थे जिसकी प्रत्येक शाखा पर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं।।१८।।

इस तरह इन्द्राणी ने इन्द्र की गोदी में बैठे हुए भगवान् को अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर जब उनकी रूप-सम्पदा देखी तब वह स्वयं भारी आश्चर्य को प्राप्त हुई।।१९।।

संक्रन्दनोऽपि तद्रूपशोभां द्रष्टुं तदातनीम्।
सहस्राक्षोऽभवन्नूनं स्पृहयालुरतृप्तिकः।।२०।।
तदा निमेषविमुखै र्लोचनैस्तं सुरासुराः।
ददृशुःगिरिराजस्य शिखामणिमिव क्षणम्।।२१।।
ततस्तं स्तोतुमिन्द्राद्याः प्राक्रमन्त सुरोत्तमाः।
वर्त्स्यत् तीर्थकरत्वस्य प्राभवं तद्धि पुष्कलम्।।२२।।
त्वं देव परमानन्दमस्माकं कर्त्तुमुद्गतः।
किमु प्रबोधमायान्ति विनार्कात् कमलाकराः।।२३।।
मिथ्याज्ञानान्धकूपेऽस्मिन् निपतन्तमिमं जनम्।
त्वमुद्धर्त्तुमना धर्महस्तालम्बं प्रदास्यसि।।२४।।
तव वाक्किरणैर्नूनमस्मच्चेतोगतं तमः।
पुरा प्रलीयते देव तमो भास्वत्करैरिव।।२५।।
त्वमादिर्देवदेवानां त्वमादिर्जगतां गुरुः।
त्वमादिर्जगतां स्रष्टा त्वमादिर्धर्मनायकः।।२६।।

इन्द्र ने भी भगवान् के उस समय की रूपसम्बन्धी शोभा देखनी चाही परन्तु दो नेत्रों से देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ इसीलिए मालूम होता है कि वह द्व्यक्ष से सहस्राक्ष (हजारों नेत्रों वाला) हो गया था—उसने विक्रिया शक्ति से हजार नेत्र बनाकर भगवान् का रूप देखा था।।२०।।

उस समय देव और असुरों ने अपने टिमकाररहित नेत्रों से क्षण भर के लिए मेरु पर्वत के शिखामणि के समान सुशोभित होने वाले भगवान् को देखा।।२१।।

तदनन्तर इन्द्र आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने के लिए तत्पर हुए, सो ठीक ही है, तीर्थंकर होने वाले पुरुष का ऐसा ही अधिक प्रभाव होता है।।२२।।

हे देव, हम लोगों को परम आनन्द देने के लिए ही आप उदित हुए हैं। क्या सूर्य के उदित हुए बिना कभी कमलों का समूह प्रबोध को प्राप्त होता है ?।।२३।।

हे देव, मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकूप में पड़े हुए इन संसारी जीवों के उद्धार करने की इच्छा से आप धर्मरूपी हाथ का सहारा देने वाले हैं।।२४।।

हे देव, जिस प्रकार सूर्य की किरणों के द्वारा उदय होने से पहले ही अन्धकार नष्टप्राय कर दिया जाता है उसी प्रकार आपके वचनरूपी किरणों के द्वारा भी हम लोगों के हृदय का अन्धकार नष्ट कर दिया गया है।।२५।।

हे देव, आप देवों के आदि देव हैं, तीनों जगत् के आदिगुरु हैं, जगत् के आदि विधाता हैं और धर्म के आदिनायक हैं।।२६।।

त्वमेव जगतां भर्त्ता त्वमेव जगतां पिता।
त्वमेव जगतां त्राता त्वमेव जगतां गतिः।।२७।।
त्वं पूतात्मा जगद्विश्वं पुनासि परमैर्गुणैः।
स्वयं धौतो यथा लोकं धवलीकुरुते शशी।।२८।।
त्वत्तः कल्याणमाप्स्यन्ति संसारामयलङ्घिताः।
उल्लाधिता भवद्वाक्यभेषजैरमृतोपमैः।।२९।।
त्वं पूतस्त्वं पुनानोऽसि परं ज्योतिस्त्वमक्षरम्।
निर्द्धूय निखिलं क्लेशं यत्प्राप्तासि परं पदम् ।।३०।।
कूटस्थोऽपि न कूटस्थस्त्वमद्य प्रतिभासि नः।
त्वय्येव स्फातिमेष्यन्ति यदमी योगजा गुणाः।।३१।।

हे देव, आप ही जगत् के स्वामी हैं, आप ही जगत् के पिता हैं, आप ही जगत् के रक्षक हैं और आप ही जगत् के नायक हैं।।२७।।

हे देव, जिस प्रकार स्वयं धवल रहने वाला चन्द्रमा अपनी चाँदनी से समस्त लोक को धवल कर देता है उसी प्रकार स्वयं पवित्र रहने वाले आप अपने उत्कृष्ट गुणों से सारे संसार को पवित्र कर देते हैं।।२८।।

हे नाथ, संसाररूपी रोग से दुःखी हुए ये प्राणी अमृत के समान आपके वचनरूपी औषधि के द्वारा निरोग होकर आपसे परम कल्याण को प्राप्त होंगे।।२९।।

हे भगवान्, आप सम्पूर्ण क्लेशों को नष्ट कर इस तीर्थंकररूप परम पद को प्राप्त हुए हैं अतएव आप ही पवित्र हैं, आप ही दूसरों को पवित्र करने वाले हैं और आप ही अविनाशी उत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप हैं।।३०।।

हे नाथ, यद्यपि आप कूटस्थ हैं—नित्य हैं तथापि आज हम लोगों को कूटस्थ नहीं मालूम होते क्योंकि ध्यान से होने वाले समस्त गुण आप में ही वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं।

भावार्थ—जो कूटस्थ (नित्य) होता है उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् न उनमें कोई गुण घटता है और न बढ़ता है, परन्तु हम देखते हैं कि आपमें ध्यान आदि योगाभ्यास से होने वाले अनेक गुण प्रतिसमय बढ़ते रहते हैं, इस अपेक्षा से आप हमें कूटस्थ नहीं मालूम होते।।३१।।

अस्नातपूतगात्रोऽपि स्नपितोऽस्यद्य मन्दरे।
पवित्रयितुमेवैतज् जगदेनोमलीमसम्।।३२।।
युष्मज्जन्माभिषेकेण वयमेव न केवलम्।
नीताः पवित्रतां मेरुः क्षीराब्धिस्तज्जलान्यपि।।३३।।
दिङ्मुखेषूल्लसन्ति स्म युष्मत्स्नानाम्बुशीकराः।
जगदानन्दिनः सान्द्रा यशसामिव राशयः।।३४।।
अविलिप्तसुगन्धिस्त्वमविभूषितसुन्दरः।
भक्तैरभ्यर्चितोऽस्माभिर्भूषणैः सानुलेपनैः।।३५।।
लोकाधिकं दधद्धाम प्रादुरासीस्त्वमात्मभूः।
मेरोर्गर्भादिव क्ष्मायास्तव देव समुद्भवः।।३६।।
सद्योजातश्रुतिं विभ्रत् स्वर्गावतरणेऽच्युतः।
त्वमद्य वामतां धत्से कामनीयकमुद्वहन्।।३७।।

हे देव, यद्यपि आप बिना स्नान किए ही पवित्र हैं तथापि मेरु पर्वत पर जो आपका अभिषेक किया गया है वह पापों से मलिन हुए इस जगत् को पवित्र करने के लिए ही किया गया है।।३२।।

हे देव, आपके जन्माभिषेक से केवल हम लोग ही पवित्र नहीं हुए हैं किन्तु यह मेरू पर्वत, क्षीरसमुद्र तथा उन दोनों के वन (उपवन और जल) भी पवित्रता को प्राप्त हो गए हैं।।३३।।

हे देव, आपके अभिषेक के जलकण सब दिशाओं में ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो संसार को आनन्द देने वाला और घनीभूत आपके यश का समूह ही हो।।३४।।

हे देव, यद्यपि आप बिना लेप लगाए ही सुगन्धित हैं और बिना आभूषण पहने ही सुन्दर हैं तथापि हम भक्तों ने भक्तिवश ही सुगन्धित द्रव्यों के लेप और आभूषणों से आपकी पूजा की है।।३५।।

हे भगवन् , आप तेजस्वी हैं और संसार में सबसे अधिक तेज धारण करते हुए प्रकट हुए हैं इसलिए ऐसे मालूम होते हैं मानो मेरु पर्वत के गर्भ से संसार का एक शिखामणि—सूर्य ही उदय हुआ हो।।३६।।

हे देव, स्वर्गावतरण के समय आप 'सद्योजात' नाम को धारण कर रहे थे, 'अच्युत' (अविनाशी) आप हैं ही और आज सुन्दरता को धारण करते हुए 'वामदेव' इस नाम को भी धारण कर रहे हैं अर्थात् आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं।।३७।।

यथा शुद्धाकरोद्भूतो मणिः संस्कारयोगतः।
दीप्यतेऽधिकमेव त्वं जातकर्माभिसंस्कृतः।।३८।।
आरामं तस्य पश्यन्ति न तं पश्यन्ति केचन।
इत्यसद् यत्परं ज्योतिः प्रत्यक्षोऽसि त्वमद्य नः।।३९।।
त्वामामनन्ति योगीन्द्राः पुराणपुरुषं पुरुम्।
कविं पुराणमित्यादि पठन्तः स्तवविस्तरम्।।४०।।
पूतात्मने नमस्तुभ्यं नमः ख्यातगुणाय ते।
नमो भीतिभिदे तुभ्यं गुणानामेकभूतये।।४१।।
क्षमागुणप्रधानाय नमस्ते क्षितिमूर्त्तये।
जगदाल्हादिने तुभ्यं नमोऽस्तु सलिलात्मने।।४२।।
निसंगवृत्तये तुभ्यं बिभ्रते पावनीं तनुम्।
नमस्तरस्विने रुग्ण महामोहमहीरुहं।।४३।।

जिस प्रकार शुद्ध खानि से निकला हुआ मणि संस्कार के योग से अतिशय देदीप्यमान हो जाता है उसी प्रकार आप भी जन्माभिषेकरूपी जातकर्म संस्कार के योग से अतिशय देदीप्यमान हो रहे हैं।।३८।।

हे नाथ, यह जो ब्रह्माद्वैतवादियों का कहना है कि सब लोग परं ब्रह्म की शरीर आदि पर्यायें ही देख सकते हैं उसे साक्षात् कोई नहीं देख सकते' वह सब झूठ है क्योंकि परं ज्योतिःस्वरूप आप आज हमारे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं।।३९।।

हे देव, विस्तार से आपकी स्तुति करने वाले योगिराज आपको पुराणपुरुष, पुरु, कवि और पुराण आदि मानते हैं।।४०।।

हे भगवन् , आपकी आत्मा अत्यन्त पवित्र है इसलिए आपको नमस्कार हो आपके गुण सर्वत्र प्रसिद्ध हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप जन्म-मरण का भय नष्ट करने वाले हैं और गुणों के एकमात्र उत्पन्न करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।।४१।।

हे नाथ, आप क्षमा (पृथ्वी) के समान क्षमा (शान्ति) गुण को ही प्रधान रूप से धारण करते हैं इसलिए क्षमा अर्थात् पृथिवीरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो, आप जल के समान जगत् को आनन्दित करने वाले हैं इसलिए जलरूप को धारण करने वाले आपको नमस्कार हो।।४२।।

आप वायु के समान परिग्रहरहित हैं, वेगशाली हैं और मोहरूपी महावृक्ष को उखाड़ने वाले हैं इसलिए वायुरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो।।४३।।

कर्मेन्धनदहे तुभ्यं नमः पावकमूर्त्तये।
पिशङ्गजटिलाङ्गाय समिद्धध्यानतेजसे।।४४।।
अरजोऽमलसंगाय नमस्ते गगनात्मने।
विभवेऽनाद्यनन्ताय महत्त्वावधये परम्।।४५।।
सुयज्वने नमस्तुभ्यं सर्वक्रतुमयात्मने।
निर्वाणदायिने तुभ्यं नमः शीतांशुमूर्त्तये।।४६।।
नमस्तेऽनन्तबोधार्कादविनिर्भक्तशक्तये।
तीर्थकृद्भाविने तुभ्यं नमः स्तादष्टमूर्त्तये।।४७।।
महाबल नमस्तुभ्यं ललिताङ्गाय ते नमः।
श्रीमते वज्रजङ्घाय धर्मतीर्थप्रवर्त्तिने।।४८।।

आप कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाले हैं, आपका शरीर कुछ लालिमा लिए हुए पीतवर्ण तथा पुष्ट है और आपका ध्यानरूपी तेज सदा प्रदीप्त रहता है इसलिए अग्निरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो।।४४।।

आप आकाश की तरह पापरूपी धूलि की संगति से रहित हैं, विभु हैं, व्यापक हैं, अनादि अनन्त हैं, निर्विकार हैं, सबके रक्षक हैं इसलिए आकाशरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो।।४५।।

आप याजक के समान ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी साकल्य का होम करने वाले हैं इसलिए याजकरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो, आप चन्द्रमा के समान निर्वाण (मोक्ष अथवा आनन्द) देने वाले हैं इसलिए चन्द्ररूप को धारण करने वाले आपको नमस्कार हो।।४६।।

और आप अनन्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञानरूपी सूर्य से सर्वथा अभिन्न रहते हैं इसलिए सूर्यरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार हो। हे नाथ! इस प्रकार आप पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, याजक, चन्द्र और सूर्य इन आठ मूर्तियों को धारण करने वाले हैं तथा तीर्थंकर होने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

भावार्थ—अन्य मतावलम्बियों ने महादेव की पृथ्वी, जल आदि आठ मूर्तियाँ मानी हैं, यहां आचार्य ने ऊपर लिखे वर्णन से भगवान ऋषभदेव को ही उन आठ मूर्तियों को धारण करने वाला महादेव मानकर उनकी स्तुति की है।।४७।।

हे नाथ! आप महाबल अर्थात् अतुल्य बल के धारक हैं अथवा इस भव से पूर्व दसवें भव में महाबल विद्याधर थे इसलिए आपको नमस्कार हो, आप ललितांग हैं

नमः स्तादार्य ते शुद्धिश्रिते श्रीधर ते नमः।
नमः सुविधये तुभ्यमच्युतेन्द्र नमोऽस्तु ते।।४९।।
वज्रस्तम्भस्थिराङ्गाय नमस्ते वज्रनाभये।
सर्वार्थसिद्धिनाथाय सर्वार्था सिद्धिमीयुषे।।५०।।
दशावतारचरमपरमौदारिकत्विषे।
सूनवे नाभिराजस्य नमोऽस्तु परमेष्ठिने।।५१।।

अर्थात् सुन्दर शरीर को धारण करने वाले अथवा नौवें भव में ऐशान स्वर्ग के ललितांग देव थे इसलिए आपको नमस्कार हो, आप धर्मरूपी तीर्थ को प्रवर्ताने वाले ऐश्वर्यशाली और वज्रजंघ हैं अर्थात् वज्र के समान मजबूत जंघाओं को धारण करने वाले हैं अथवा आठवें भव में वज्रजंघ नाम के राजा थे ऐसे आपको नमस्कार हो।।४८।।

आप आर्य अर्थात् पूज्य हैं अथवा सातवें भव में भोगभूमिज आर्य थे इसलिए आपको नमस्कार हो, आप दिव्य श्रीधर अर्थात् उत्तम शोभा को धारण करने वाले हैं अथवा छठे भव में श्रीधर नाम के देव थे ऐसे आपके लिए नमस्कार हो, आप सुविधि अर्थात् उत्तम भाग्यशाली हैं अथवा पाँचवे भव में सुविधि नाम के राजा थे इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अच्युतेन्द्र अर्थात् अविनाशी स्वामी हैं अथवा चौथे भव में अच्युत स्वर्ग के इन्द्र थे इसलिए आपको नमस्कार हो।।४९।।

आपका शरीर वज्र के खम्भे के समान स्थिर है और आप वज्रनाभि अर्थात् वज्र के समान मजबूत नाभि को धारण करने वाले हैं अथवा तीसरे भव में वज्रनाभि नाम के चक्रवर्ती थे ऐसे आपको नमस्कार हो। आप सर्वार्थसिद्धि के नाथ अर्थात् सब पदार्थों की सिद्धि के स्वामी तथा सर्वार्थसिद्धि अर्थात् सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त हैं अथवा दूसरे भव में सर्वार्थसिद्धि विमान को प्राप्त कर उसके स्वामी थे इसलिए आपको नमस्कार हो।।५०।।

हे नाथ ! आप दशावतारचरम अर्थात् सांसारिक पर्यायों में अन्तिम अथवा ऊपर कहे हुए महाबल आदि दश अवतारों में अन्तिम परमौदारिक शरीर को धारण करने वाले नाभिराज के पुत्र वृषभदेव परमेष्ठी हुए हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

भावार्थ—इस प्रकार श्लेषालंकार का आश्रय लेकर आचार्य ने भगवान् वृषभदेव के दस अवतारों का वर्णन किया है, उसका अभिप्राय यह है कि अन्य मतावलम्बी श्रीकृष्ण विष्णु के दस अवतार मानते हैं। यहाँ आचार्य ने दस अवतार बतलाकर भगवान् वृषभदेव को ही श्रीकृष्ण-विष्णु सिद्ध किया है।।५१।।

भवन्तमित्यभिष्टुत्य नान्यदाशास्महे वयम्।
भक्तिस्त्वय्येव नो भूयादलमन्यैर्मितैः फलैः।।५२।।
इति स्तुत्वा सुरेन्द्रास्तं परमानन्दनिर्भराः।
अयोध्यागमने भूयो मतिं चक्रुः कृतोत्सवाः।।५३।।
तथैव प्रहता भेर्यस्तथैवाघोषितो जयः।
तथैवैरावतेभेन्द्रस्कन्धारूढं व्यधुर्जिनम्।।५४।।
महाकलकलैर्गीतैर्नृत्तैः सजयघोषणैः।
गगनाङ्गणमुत्पत्य द्रागाजग्मुरमूं पुरीम्।।५५।।
याचकाद् गगनोल्लङ्घिशिखरैः पृथुगोपुरैः।
स्वर्गमाह्वयमानेव पवनोच्छ्रितकेतनैः।।५६।।
यस्यां मणिमयी भूमिस्तारकाप्रतिबिम्बितैः।
दधे कुमुद्वतीलक्ष्मीमक्षूणां क्षणदामुखे।।५७।।

हे देव ! इस प्रकार आपकी स्तुति कर हम लोग इसी फल की आशा करते हैं कि हम लोगों की भक्ति आप में ही रहे। हमें अन्य परिमित फलों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है।।५२।।

इस प्रकार परम आनन्द से भरे हुए इन्द्रों ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुति कर उत्सव के साथ अयोध्या चलने का फिर विचार किया।।५३।।

अयोध्या से मेरु पर्वत तक जाते समय मार्ग में जैसा उत्सव हुआ था उसी प्रकार फिर होने लगा। उसी प्रकार दुन्दुभि बजने लगे, उसी प्रकार जय-जय शब्द का उच्चारण होने लगा और उसी प्रकार इन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान् को ऐरावत हाथी के कन्धे पर विराजमान किया।।५४।।

वे देव बड़ा भारी कोलाहल, गीत, नृत्य और जय-जय शब्द की घोषणा करते हुए आकाशरूपी आँगन को उल्लंघ कर शीघ्र ही अयोध्यापुरी आ पहुँचे।।५५।।

जिनके शिखर आकाश को उल्लंघन करने वाले हैं और जिन पर लगी हुई पताकाएँ वायु के वेग से फहरा रही हैं ऐसे गोपुर दरवाजों से वह अयोध्या नगरी ऐसी शोभायमान होती थी मानो स्वर्गपुरी को ही बुला रही हो।।५६।।

उस अयोध्यापुरी की मणिमयी भूमि रात्रि के प्रारम्भ समय में ताराओं का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसी जान पड़ती थी मानो कुमुदों से सहित सरसी की अखण्ड शोभा ही धारण कर रही हो।।५७।।

या पताकाकरैर्दूरमुत्क्षिप्तैः पवनाहतैः।
आजुहूषुरिव स्वर्गवासिनोऽभूत् कुतूहलात्।।५८।।
यस्यां मणिमयैर्हर्म्यैः कृतदम्पतिसंश्रयैः।
आक्षिप्तेव सुराधीशविमानश्रीरसंभ्रमम्।।५९।।
यत्र सौधाग्रसंलग्नैरिन्दुकान्तशिलातलैः।
चन्द्रपादाभिसंस्पर्शात् क्षरद्भिर्जलदायितम्।।६०।।
या धत्ते स्म महासौधशिखरैर्मणिभासुरैः।
सुरचापश्रियं दिक्षु विततां रत्नमामयीम्।।६१।।
सरोजरागमाणिक्य किरणैः क्वचिदम्बरम्।
यत्र संध्याम्बुदच्छन्नमिवालक्ष्यत पाटलम्।।६२।।
इन्द्रनीलोपलैः सौधकूटलग्नैर्विलङ्घितम्।
स्फुरद्भिर्ज्योतिषां चक्रं यत्र नालक्ष्यताम्बरे।।६३।।

दूर तक आकाश में वायु के द्वारा हिलती हुई पताकाओं से वह अयोध्या ऐसी मालूम होती थी मानो कौतूहलवश ऊँचे उठाए हुए हाथों से स्वर्गवासी देवों को बुलाना चाहती हो।।५८।।

जिनमें अनेक सुन्दर स्त्री-पुरुष निवास करते थे ऐसे वहाँ के मणिमय महलों को देखकर निःसन्देह कहना पड़ता था कि मानो उन महलों ने इन्द्र के विमानों की शोभा छीन ली थी अथवा तिरस्कृत कर दी थी।।५९।।

वहाँ पर चूना गची के बने हुए बड़े-बड़े महलों के अग्रभाग पर सैकड़ों चद्रकान्तमणि लगे हुए थे, रात में चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श पाकर उसमें पानी झर रहा था जिससे वे मणि मेघ के समान मालूम होते थे।।६०।।

उस नगरी के बड़े-बड़े राजमहलों के शिखर अनेक मणियों से देदीप्यमान रहते थे, उनसे सब दिशाओं में रत्नों का प्रकाश फैलता रहता था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह नगरी इन्द्रधनुष ही धारण कर रही हो।।६१।।

उस नगरी का आकाश कहीं-कहीं पर पद्मरागमणियों की किरणों से कुछ-कुछ लाल हो रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो सन्ध्याकाल के बादलों से आच्छादित ही हो रहा हो। ६२।।

वहाँ के राजमहलों के शिखरों में लगे हुए देदीप्यमान इन्द्रनीलमणियों से छिपा हुआ ज्योतिश्चक्र आकाश में दिखाई ही नहीं पड़ता था।।६३।।

गिरिकूटतटानीव सौधकूटानि शारदाः।
घना यत्राश्रयन्ति स्म सूत्रतः कस्य नाश्रयः।।६४।।
प्राकारवलयो यस्याश्चामीकरमयोऽद्युतम्।
मानुषोत्तरशैलस्य श्रियं रत्नैरिवाहसन्।।६५।।
यत्खातिका महाम्भोधेर्लीलां यादोभिरुद्धतैः।
धत्ते स्म क्षुभितालोलकल्लोलावर्त्तभीषणा।।६६।।
जिनप्रसवभूमित्वाद् या शुद्धाकरभूमिवत्।
सूते स्म पुरुषानर्घ्यमहारत्नानि कोटिशः।।६७।।
यस्याश्च बहिरुद्यानैरनेकानोकहाकुलैः।
फलच्छायप्रदैः कल्पतरुच्छाया स्म लङ्घ्यते।।६८।।
यस्याः पर्यन्तमावेष्ट्य स्थिता सा सरयूर्नदी।
लसत्पुलिनसंसुप्तसारसा हंसनादिनी।।६९।।
यां प्राहुररिदुर्लङ्घ्यामयोध्यां योधसंकुलाम्।
विनीताखण्डमध्यस्था या तन्नाभिरिवाबभौ।।७०।।

उस नगरी के राजमहलों के शिखर पर्वतों के शिखरों के समान बहुत ही ऊँचे थे और उन पर शरद् ऋतु के मेघ आश्रय लेते थे सो ठीक ही है क्योंकि जो अतिशय उन्नत (ऊँचा या उदार) होता है वह किसका आश्रय नहीं होता ? ।।६४।।

उस नगरी का सुवर्ण का बना हुआ परकोटा ऐसा अच्छा शोभायमान हो रहा था मानो अपने में लगे हुए रत्नों की किरणों से सुमेरु पर्वत की शोभा की हँसी ही कर रहा हो।।६५।।

अयोध्यापुरी की परिखा उद्धत हुए जलचर जीवों से सदा क्षोभ को प्राप्त होती रहती थी और चञ्चल लहरों तथा आवर्तों से भयंकर रहती थी इसलिए किसी बड़े भारी समुद्र की लीला धारण करती थी।।६६।।

भगवान् वृषभदेव की जन्मभूमि होने से वह नगरी शुद्ध खानि की भूमि के समान थी और उसने करोड़ों पुरुषरूपी अमूल्य महारत्न उत्पन्न भी किए थे।६७।।

अनेक प्रकार के फल तथा छाया देने वाले और अनेक प्रकार के वृक्षों से भरे हुए वहाँ के बाहरी उपवनों ने कल्पवृक्षों की शोभा तिरस्कृत कर दी थी।।६८।।

उसके समीपवर्ती प्रदेश को घेरकर सरयू नदी स्थित थी जिसके सुन्दर किनारों पर सारस पक्षी सो रहे थे और हंस मनोहर शब्द कर रहे थे।।६९।।

वह नगरी अन्य शत्रुओं के द्वारा दुर्लघ्य थी और स्वयं अनेक योद्धाओं से भरी हुई थी इसीलिए लोग उसे 'अयोध्या' (जिससे कोई युद्ध नहीं कर सके) कहते थे। उसका

तामारुध्य पुरीं विष्वगनीकानि सुधाशिनाम्।
तस्थुर्जगन्ति तच्छोभामागतानीव वीक्षितुम्।।७१।।
ततः कतिपयैर्देवैर्देवमादाय देवराट्।
प्रविवेश नृपागारं परार्घ्यश्रीपरम्परम्।।७२।।
तत्रामरकृतानेक विन्यासे श्रीगृहाङ्गणे।
हर्यासने कुमारं तं सौधर्मेन्द्रो न्यवीविशत्।।७३।।
नाभिराजः समुद्भिन्नपुलकं गात्रमुद्वहन्।
प्रीतिविस्फारिताक्षस्तं ददर्श प्रियदर्शनम्।।७४।।
मायानिद्रामपाकृत्य देवी शच्या प्रबोधिता।
देवीभिः सममैक्षिष्ट प्रहृष्टा जगतां पतिम्।।७५।।
तेजः पुञ्जमिवोद्भूतं सापश्यत् स्वसुतं सती।
बालार्केन्द्रेण च (सा) तेन दिगैन्द्रीव विदिद्युते।।७६।।
शच्या समं च नाकेशं तावद्राष्टां जगद्गुरोः।
पितरौ नितरां प्रीतौ परिपूर्णमनोरथौ।।७७।।

दूसरा नाम विनीता भी था और वह आर्यखण्ड के मध्य में स्थित थी इसलिए उसकी नाभि के समान शोभायमान हो रही थी।।७०।।

देवों की सेनाएँ उस अयोध्यापुरी को चारों ओर से घेरकर ठहर गयी थीं जिससे ऐसी मालूम होती थी मानो उसकी शोभा देखने के लिए तीनों लोक ही आ गए हों।।७१।।

तत्पश्चात् इन्द्र ने भगवान् वृषभदेव को लेकर कुछ देवों के साथ उत्कृष्ट लक्ष्मी से सुशोभित महाराज नाभिराज के घर में प्रवेश किया।।७२।।

और वहाँ जहाँ पर देवों ने अनेक प्रकार की सुन्दर रचना की है ऐसे श्रीगृह के आँगन में बालकरूपधारी भगवान् को सिंहासन पर विराजमान किया।।७३।।

महाराज नाभिराज उन प्रियदर्शन भगवान् को देखने लगे, उस समय उनका सारा शरीर रोमांचित हो रहा था, नेत्र प्रीति से प्रफुल्लित तथा विस्तृत हो रहे थे।।७४।।

मायामयी निद्रा दूर कर इन्द्राणी के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुई माता मरुदेवी भी हर्षितचित्त होकर देवियों के साथ-साथ तीनों जगत् के स्वामी भगवान् वृषभदेव को देखने लगी।।७५।। वह सती मरुदेवी अपने पुत्र को उदय हुए तेज के पुंज के समान देख रही थी और वह उससे ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसी कि बालसूर्य से पूर्व दिशा सुशोभित होती है।।७६।। जिनके मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं ऐसे जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव के माता-पिता अतिशय प्रसन्न होते हुए इन्द्राणी के साथ-साथ इन्द्र को देखने लगे।।७७।।

ततस्तौ जगतां पूज्यो पूजयामास वासवः।
विचित्रैर्भूषणैः स्त्रग्मिरंशुकैश्च महार्घकैः।।७८।।
तौ प्रीतः प्रशसंसेति सौधर्मेन्द्रः सुरैः समम्।
युवां पुण्यधवौ धन्यौ ययोर्लोकाग्रणीः सुतः।।७९।।
युवामेव महाभागौ युवां कल्याणभागिनौ।
युवयोर्न तुला लोके युवामधि गुरोर्गुरू।।८०।।
भो नाभिराज सत्यं त्वमुदयाद्रिर्महोदयः।
देवी प्राच्येव यज्ज्योति र्युष्मत्तः परमुद्बभौ।।८१।।
देवधिष्ण्यमिवागारमि दमाराध्यमद्य वाम्।
पूज्यौ युवां च नः शाश्वत् पितरौ जगतां पितुः।।८२।।
इत्यभिष्टुत्य तो देवमर्पयित्वा च तत्करे।
शताध्वरः क्षणं तस्थौ कुर्वस्तामेव संकथाम्।।८३।।
तौ शक्रेण यथावृत्तमावेदितजिनोत्सवौ।
प्रमदस्य परां कोटिमारूढौ विस्मयस्य च।।८४।।

तत्पश्चात् इन्द्र ने नाना प्रकार के आभूषणों, मालाओं और बहुमूल्य वस्त्रों से उन जगत्पूज्य माता-पिता की पूजा की।।७८।।

फिर वह सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन दोनों की इस प्रकार स्तुति करने लगा कि आप दोनों पुण्यरूपी धन से सहित हैं तथा बड़े ही धन्य हैं क्योंकि समस्त लोक में श्रेष्ठ पुत्र आपके ही हुआ है।७९।।

इस संसार में आप दोनों ही महाभाग्यशाली हैं, आप दोनों ही अनेक कल्याणों को प्राप्त होने वाले हैं और लोक में आप दोनों की बराबरी करने वाला कोई नहीं है क्योंकि आप जगत् के गुरु के भी गुरु अर्थात् माता-पिता हैं।।८०।।

हे नाभिराज! सच है कि आप ऐश्वर्यवाली उदयाचल हैं और रानी मरुदेवी पूर्व दिशा हैं क्योंकि यह पुत्ररूपी परम ज्योति आपसे ही उत्पन्न हुई है।।८१।।

आज आपका यह घर हम लोगों के लिए जिनालय के समान पूज्य है और आप जगत्पिता के भी माता-पिता हैं इसलिए हम लोगों के लिए सदा पूज्य हैं।।८२।।

इस प्रकार इन्द्र ने माता-पिता की स्तुति कर उनके हाथों में भगवान् को सौंप दिया और फिर उन्हीं के जन्माभिषेक की उत्तम कथा कहता हुआ वह क्षण भर वहीं पर खड़ा रहा।।८३।। इन्द्र के द्वारा जन्माभिषेक की सब कथा मालूम कर माता-पिता दोनों ही हर्ष और आश्चर्य की अन्तिम सीमा पर आरूढ़ हुए।।८४।।

जातकर्मोत्सवं भूयश्चक्रतुस्तौ शतक्रतोः।
लब्ध्वानुमतिमद्धद्ध्यां समं पौरेर्धृतोत्सवैः।।८५।।
सा केतुमालिकाकीर्णा पुरी साकेतसाह्वया।
तदासीत् स्वर्गमाह्वातुं सा कूतेवात्तकौतुका।।८६।।
पुरी स्वर्गपुरीवासौ समाः पोरा दिवौकसाम्।
तदा संधृतनेपथ्याः पुरनार्योऽप्सरःसमाः।।८७।।
धूपामोदैर्दिशो रुद्धाः पटवासैस्ततं नभः।
संगीतमुरव ध्वानैर्दिक्चक्रं बधिरीकृतम् ।।८८।।
पुरवीथ्यस्तदाभूवन् रत्नचूर्णैरलंकृताः।
निरुद्धातपसंपाताः प्रचलत्केतनांशुकैः।।८९।।
चलत्पताकमाबद्धतोरणाञ्चितगोपुरम्।
कृतोपशोभमारब्धसंगीतरवरुद्धदिक्।।९०।।
प्रनृत्यदिव सौमुख्यमिव तद्दर्शयत् पुरम् ।
सनेपथ्यमिवानन्दात् प्रजल्पदिव चाभवत् ।।९१।।

माता-पिता ने इन्द्र की अनुमति प्राप्त कर अनेक उत्सव करने वाले पुरवासी लोगों के साथ-साथ बड़ी विभूति से भगवान् का फिर भी जन्मोत्सव किया।।८५।।

उस समय पताकाओं की पंक्ति से भरी हुई वह अयोध्या नगरी ऐसी मालूम होती थी मानो कौतुकवश स्वर्ग को बुलाने के लिए इशारा ही कर रही हो।।८६।।

उस समय वह अयोध्या नगरी स्वर्गपुरी के समान मालूम होती थी, नगरवासी लोग देवों के तुल्य जान पड़ते थे और अनेक वस्त्राभूषण धारण किए हुए नगरनिवासिनी स्त्रियाँ अप्सराओं के समान जान पड़ती थीं।।८७।।

धूप की सुगन्धि से सब दिशाएँ भर गयी थीं, सुगन्धित चूर्ण से आकाश व्याप्त हो गया था और संगीत तथा मृदंगों के शब्द से समस्त दिशाएँ बहरी हो गयी थीं।।८८।।

उस समय नगर की सब गलियाँ रत्नों के चूर्ण से अलंकृत हो रही थीं और हिलती हुई पताकाओं के वस्त्रों से उनमें धूप का आना रुक गया था।।८९।।

उस समय उस नगर में सब स्थानों पर पताकाएँ हिल रही थीं (फहरा रही थीं) जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों वह नगर नृत्य ही कर रहा हो। उसके गोपुर-दरवाजे बँधे हुए तोरणों से शोभायमान हो रहे थे जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने मुख की सुन्दरता ही दिखला रहा हो, जगह-जगह वह नगर सजाया गया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वस्त्राभूषण ही धारण किए हो और प्रारम्भ किए हुए संगीत के शब्द से उस

ततो गीतैश्च नृत्तैश्च वादित्रैश्च समङ्गलैः।
व्यग्रः पौरजनः सर्वोऽप्यासीदानन्दनिर्भरः।।९२।।
न तदा कोऽप्यभूद् दीनो न तदा कोऽपि दुर्विधः।
न तदा कोऽप्यपूर्णेच्छो न तदा कोऽप्यकौतुकः।।९३।।
सप्रमोदमयं विश्वमित्यातन्वन्महोत्सवः।
यथा मेरौ तथैवास्मिन् पुरे सान्तःपुरेऽवृतत् ।।९४।।
दृष्ट्वा प्रमुदितं तेषा स्वं प्रमोदं प्रकाशयन्।
संक्रन्दनो मनोवृत्तिमानन्दानन्दनाटके।।९५।।
नृत्तारम्भे महेन्द्रस्य सज्जः संगीतविस्तरः।
गन्धर्वैस्तद्विधानज्ञै र्भाण्डोपवहनादिभिः।।९६।।
कृतानुकरणं नाट्यं तत्प्रयोज्यं यथागमम्।
स चागमो महेन्द्राद्यैर्यथाम्नाय मनुस्मृतः।।९७।।

नगर की समस्त दिशाएँ भर रही थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वह आनन्द से बातचीत ही कर रहा हो अथवा गा रहा हो।।९०-९१।।

इस प्रकार आनन्द से भरे हुए समस्त पुरवासी जन गीत, नृत्य, वादित्र तथा अन्य अनेक मङ्गल कार्यों में व्यग्र हो रहे थे।।९२।।

उस समय उस नगर में न तो कोई दीन रहा था, न निर्धन रहा था, न कोई ऐसा ही रहा था जिसकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई हों और न कोई ऐसा ही था जिसे आनन्द उत्पन्न नहीं हुआ हो।।९३।।

इस तरह सारे संसार को आनन्दित करने वाला वह महोत्सव जैसा मेरु पर्वत पर हुआ था वैसा ही अन्तःपुर सहित इस अयोध्या नगर में हुआ।।९४।।

उन नगरवासियों का आनन्द देखकर अपने आनन्द को प्रकाशित करते हुए इन्द्र ने आनन्द नामक नाटक करने में अपना मन लगाया।।९५।।

ज्यों ही इन्द्र ने नृत्य करना प्रारम्भ किया त्यों ही संगीत विद्या के जानने वाले गन्धर्वों ने अपने बाजे वगैरह ठीक कर विस्तार के साथ संगीत करना प्रारम्भ कर दिया।।९६।।

पहले किसी के द्वारा किए हुए कार्य का अनुकरण करना नाट्य कहलाता है, वह नाट्य, नाट्यशास्त्र के अनुसार ही करने के योग्य है और उस नाट्यशास्त्र को इन्द्रादि देव ही अच्छी तरह जानते हैं।।९७।।

वक्तृणां तत्प्रयोक्तृत्वे लालित्यं किमु वर्ण्यते।
पात्रान्तरेऽपि संक्रान्तं यत् सतां चित्तरञ्जनम्।।९८।।
ततः श्रव्यं च दृश्यं च तत्प्रयुक्तं महात्मनाम्।
पाठ्यैर्नानाविधैश्चित्रै राङ्गिकाभिनयैरपि।।९९।।
विकृष्टः कुतपन्यासो मही सकुलभूधरा।
रङ्गस्त्रिभुवनाभोगः सहस्राक्षो महानटः।।१००।।
प्रेक्षका नाभिराजाद्याः समाराध्यो जगद्गुरुः।
फलं त्रिवर्गसंभूतिः परमानन्द एव च।।१०१।।
इत्येकशोऽपि संप्रीत्यै वस्तुजातमिदं सताम्।
किमु तत्सर्वसंदोहः पुण्यैरेकत्र संगतः।।१०२।।
कृत्वा समवतारं तु त्रिवर्गफलसाधनम्।
जन्माभिषेकसंबन्धं प्रायुङ्क्तैनं तदा हरिः।।१०३।।
तदा प्रयुक्तमन्यच्च रूपकं बहुरूपकम्।
दशावतारसंदर्भमधिकृत्य जिनेशिनः।।१०४।।

जो नाट्य या नृत्य शिष्य-प्रतिशिष्यरूप अन्य पात्रों में संक्रान्त होकर भी सज्जनों का मनोरंजन करता रहता है यदि उसे स्वयं उसका निरूपण करने वाला ही करे तो फिर उसकी मनोहरता का क्या वर्णन करना है ?।।९८।।

तत्पश्चात् अनेक प्रकार के पाठों और चित्र-विचित्र शरीर की चेष्टाओं से इन्द्र के द्वारा किया हुआ वह नृत्य महात्मा पुरुषों के देखने और सुनने योग्य था।।९९।।

उस समय अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, तीनों लोकों में फैली हुई कुलाचलों सहित पृथिवी ही उसकी रंगभूमि थी, स्वयं इन्द्र प्रधान नृत्य करने वाला था, नाभिराज आदि उत्तम-उत्तम पुरुष उस नृत्य के दर्शक थे, जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव उसके आराध्य (प्रसन्न करने योग्य) देव थे और धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों की सिद्धि तथा परमानन्दरूप मोक्ष की प्राप्ति होना ही उसका फल था। इन ऊपर कही हुई वस्तुओं में से एक-एक वस्तु भी सज्जन पुरुषों को प्रीति उत्पन्न करने वाली है फिर पुण्योदय से पूर्वोक्त सभी वस्तुओं का समुदाय किसी एक जगह आ मिले तो कहना ही क्या है ?।।१००-१०२।।

उस समय इन्द्र ने पहले त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) रूप फल को सिद्ध करने वाला गर्भावतार सम्बन्धी नाटक किया और फिर जन्माभिषेकसम्बन्धी नाटक करना प्रारम्भ किया।।१०३।।

तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् के महाबल आदि दशावतार सम्बन्धी वृत्तान्त को लेकर

तत्प्रयोगविधौ पूर्वं पूर्वरङ्गं समङ्गलम्।
प्रारेभे मधवाधानां विधाताय समाहितः।।१०५।।
पूर्वरङ्गप्रसंगेन पुष्पाञ्जलिपुरस्सरम्।
ताण्डवारम्भमेवाग्रे सुरप्राग्रहरोऽग्रहीत्।।१०६।।
प्रयोज्य नान्दीमन्तेऽस्या विशन् रङ्गं बभौ हरिः।
धृतमङ्गलनेपथ्यो नाट्यवेदावतारवित्।।१०७।।
स रङ्गमवतीर्णोऽभाद् वैशाखस्थानमास्थितः।
लोकस्कन्ध इवोद्भूतो मरुद्भिरभितो वृतः।।१०८।।
मध्येरङ्गमसौ रेजे क्षिपन् पुष्पाञ्जलिं हरिः।
विभजन्निव पीताव शेषनाट्यरसं स्वयम्।।१०९।।
ललितोद्भटनेपथ्यो लसन्नयनसन्ततिः।
स रेजे कल्पशाखीव सप्रसूनः सभूषणः।।११०।।

अनेक रूप दिखलाने वाले अन्य अनेक नाटक करने प्रारम्भ किए।।१०४।।

उन नाटकों का प्रयोग करते समय इन्द्र ने सबसे पहले पापों का नाश करने के लिए मंगलाचरण किया और फिर सावधान होकर पूर्वरंग का प्रारम्भ किया।।१०५।।

पूर्वरंग प्रारम्भ करते समय इन्द्र ने पुष्पाञ्जलि क्षेपण करते हुए सबसे पहले ताण्डव नृत्य प्रारम्भ किया।।१०६।। ताण्डव नृत्य के प्रारम्भ में उसने नान्दी मङ्गल किया और फिर नान्दी मंगल कर चुकने के बाद रंगभूमि में प्रवेश किया। उस समय नाट्यशास्त्र के अवतार को जानने वाला और मंगलमय वस्त्राभूषण धारण करने वाला वह इन्द्र बहुत ही शोभायमान हो रहा था।।१०७।।

जिस समय वह रंगभूमि में अवतीर्ण हुआ था उस समय वह वैशाख-आसन से खड़ा हुआ था अर्थात् पैर फैलाकर अपने दोनों हाथ कमर पर रखे हुए था और चारों ओर से मरुत् अर्थात् देवों से घिरा हुआ था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो मरुत् अर्थात् वातवलयों से घिरा हुआ लोकस्कन्ध ही हो।।१०८।।

रंगभूमि के मध्य में पुष्पाञ्जलि बिखेरता हुआ वह इन्द्र ऐसा भला मालूम होता था मानो अपने पान करने से बचे हुए नाट्यरस को दूसरों के लिए बाँट ही रहा हो।।१०९।।

वह इन्द्र अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से शोभायमान था और उत्तम नेत्रों का समूह धारण कर रहा था इसलिए पुष्पों और आभूषणों से सहित किसी कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हो रहा था।।११०।।

पुष्पाञ्जलिः पतन् रेजे मत्तालिभिरनुदृतः।
नेत्रौघ इव वृत्रघ्नः कल्माषितनभोऽङ्गणः।।१११।।
परितः परितस्तार तारास्य नयनावली।
रङ्गमात्मप्रभोत्सर्पैः श्रितैर्जवनिकाश्रियम् ।।११२।।
सलयैः पदविन्यासैः परितो रङ्गमण्डलम्।
परिक्रामन्नसौ रेजे विमान इव काश्यपीम्।।११३।।
कृतपुष्पाञ्जलेरस्य ताण्डवारम्भसंभ्रमे।
पुष्पवर्ष दिवोऽमुञ्चन् सुरास्तद्भक्तितोषिताः।।११४।।
तदा पुष्करवाद्यानि मन्द्रं दध्वनुरक्रमात् ।
दिक्तटेषु प्रतिध्वानानातन्वानि कोटिशः।।११५।।
वीणा मधुरमारेणुः कलं वंशा विसस्वनुः।
गेयान्यनुगतान्येषां समं तालैरराणिषुः।।११६।।
उपवादकवाद्यानि परिवादकवादितैः।
बभूवुः संगतान्येव सांगत्यं हि सयोनिषु।।११७।।

जिसके पीछे अनेक मदोन्मत्त भौंरे दौड़ रहे हैं ऐसी वह पड़ती हुई पुष्पाञ्जलि ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो आकाश को चित्र-विचित्र करने वाला इन्द्र के नेत्रों का समूह ही हो।।१११।।

इन्द्र के बड़े-बड़े नेत्रों की पंक्ति जवनिका (परदा) की शोभा धारण करने वाली अपनी फैलती हुई प्रभा से रंगभूमि को चारों ओर से आच्छादित कर रही थी।।११२।।

वह इन्द्र ताल के साथ-साथ पैर रखकर रंगभूमि के चारों ओर घूमता हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो पृथ्वी को नाप ही रहा हो।।११३।।

जब इन्द्र ने पुष्पाञ्जलि क्षेपण कर ताण्डव नृत्य करना प्रारम्भ किया तब उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए देवों ने स्वर्ग अथवा आकाश से पुष्पवर्षा की थी।।११४।।

उस समय दिशाओं के अन्तभाग तक प्रतिध्वनि को विस्तृत करते हुए पुष्कर आदि करोड़ों बाजे एक साथ गम्भीर शब्दों से बज रहे थे।।११५।।

वीणा भी मनोहर शब्द कर रही थी, मनोहर मुरली भी मधुर शब्दों से बज रही थी और उन बाजों के साथ ही साथ ताल से सहित संगीत के शब्द हो रहे थे।।११६।।

वीणा बजाने वाले मनुष्य जिस स्वर वा शैली से मिलाकर बजा रहे थे सो ठीक ही है, एक सी वस्तुओं में मिलाप होना ही चाहिए।।११७।।

काकलीकलमामन्द्रतारमूर्च्छनमुज्जगे।
तदोपवीणयन्तीभिः किन्नरीभिरनुल्वणम्।।११८।।
ध्वनद्भिर्मधुरं मौखं संबन्धं प्राप्य शिष्यवत्।
कृतं वंशोचितं वंशैः प्रयोगेष्वविवादिभिः।।११९।।
प्रयुज्य मघवा शुद्धं पूर्वरङ्गमनुक्रमात्।
करणैरङ्गहारैश्च चित्रं प्रायुङ्क्त तं पुनः।।१२०।।
चित्रैश्च रेचकैः पादकटिकण्ठकराश्रितैः।
ननाट ताण्डवं शक्रो दर्शयन् रसमूर्जितम्।।१२१।।
तस्मिन्बाहुसहस्राणि विकृत्य प्रणिनृत्यति।
धरा चरणविन्यासैः स्फुटन्तीव तदाचलत्।।१२२।।
कुलाचलाश्चलन्ति स्म तृणानामिव राशयः।
अभूज्जलधिरुद्वेलः प्रमदादिव निर्ध्वनन् ।।१२३।।

उस समय वीणा बजाती हुई किन्नर देवियाँ कोमल, मनोहर, कुछ-कुछ गम्भीर, उच्च और सूक्ष्मरूप से गा रही थीं।।११८।।

जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरु का उपदेश पाकर मधुर शब्द करता है और अनुमानादि के प्रयोग में किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं करता हुआ अपने उत्तम वंश (कुल) के योग्य कार्य करता है उसी प्रकार बंशी आदि बाँसों के बाजे भी मुख का सम्बन्ध पाकर मनोहर शब्द कर रहे थे और नृत्य-संगीत आदि के प्रयोग में किसी प्रकार का विवाद (विरोध) नहीं करते हुए अपने वंश (बाँस) के योग्य कार्य कर रहे थे।।११९।।

इस प्रकार इन्द्र ने पहले तो शुद्ध (कार्यान्तर से रहित) पूर्वरंग का प्रयोग किया और फिर करण (हाथों का हिलाना) तथा अङ्गहार (शरीर का मटकाना) के द्वारा विविधरूप में उसका प्रयोग किया।।१२०।।

वह इन्द्र पाँव, कमर, कण्ठ और हाथों को अनेक प्रकार से घुमाकर उत्तम रस दिखलाता हुआ ताण्डव नृत्य कर रहा था।।१२१।।

जिस समय वह इन्द्र विक्रिया से हजार भुजाएँ बनाकर नृत्य कर रहा था, उस समय पृथ्वी उसके पैरों के रखने से हिलने लगी थी मानो फट रही हो, कुलपर्वत तृणों की राशि के समान चञ्चल हो उठे थे और समुद्र भी मानो आनन्द से शब्द करता हुआ लहराने लगा था।।१२२-१२३।।

लसद्बाहुर्महोदग्रविग्रहः सुरनायकः।
कल्पांघ्रिप इवानत्तीच्चलदंशुकभूषणः।।१२४।।
चलत्तन्मौलिरत्नांशुपरिवेषैर्नभः स्थलम्।
तदा विदिद्युते विद्युत्सहस्रैरिव सन्ततम्।।१२५।।
विक्षिप्ता बाहुविक्षेपैस्तारकाः परितोऽभ्रमन्।
भ्रमणाबिद्धविच्छिन्नहारमुक्ताफलश्रियः।।१२६।।
नृत्यतोऽस्य भुजोल्लासैः पयोदाः परिघट्टिताः।
पयोलवच्युतो रेजुः शुचेव क्षरउश्रवः।।१२७।।
रेचकेऽस्य चलन्मौलिप्रोच्छलन्मणिरीतयः।
वेगाविद्धाः समं भ्रेमुरलातवलयायिताः।।१२८।।
नृत्तक्षोभान्महीक्षोभे क्षुभिता जलराशयः।
क्षालयन्ति स्म दिग्भित्तीः प्रोच्चलज्जलशीकरैः।।१२९।।

उस समय इन्द्र की चञ्चल भुजाएँ बड़ी ही मनोहर थीं, वह शरीर से स्वयं ऊँचा था और चञ्चल वस्त्र तथा आभूषणों से सहित था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिसकी शाखाएँ हिल रही हैं, जो बहुत ऊँचा है और जो हिलते हुए वस्त्र तथा आभूषणों से सुशोभित है ऐसा कल्पवृक्ष ही नृत्य कर रहा हो।।१२४।। उस समय इन्द्र के हिलते हुए मुकुट में लगे हुए रत्नों की किरणों के मण्डल से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हजारों बिजलियों से ही व्याप्त हो रहा हो।।१२५।।

नृत्य करते समय इन्द्र की भुजाओं के विक्षेप से बिखरे हुए तारे चारों ओर फिर रहे थे और ऐसे मालूम होते थे मानो फिरकी लगाने से टूटे हुए हार के मोती ही हों।।१२६।।

नृत्य करते समय इन्द्र की भुजाओं के उल्लास से टकराए हुए तथा पानी की छोटी-छोटी बूँदों को छोड़ते हुए मेघ ऐसे मालूम होते थे मानो शोक से आँसू ही छोड़ रहे हों।।१२७।।

नृत्य करते-करते जब कभी इन्द्र फिरकी लेता था तब उसके वेग के आवेश से फिरती हुई उसके मुकुट के मणियों की पंक्तियाँ अलातचक्र की नाई भ्रमण करने लगती थीं।।१२८।।

इन्द्र के उस नृत्य के क्षोभ से पृथिवी क्षुभित हो उठी थी, पृथिवी के क्षुभित होने से समुद्र भी क्षुभित हो उठे थे और उछलते हुए जल के कणों से दिशाओं की भित्तियों का प्रक्षालन करने लगे थे।।१२९।।

क्षणादेकः क्षणान्नैकः क्षणाद्व्यापी क्षणादणुः।
क्षणादारात् क्षणाद् दूरे क्षणाद् व्योम्नि क्षणाद् भुवि।।१३०।।
इति प्रतन्वतात्मीयं सामर्थ्यं विक्रियोत्थितम्।
इन्द्रजालमिवेन्द्रेण प्रयुक्तमभवत् तदा।।१३१।।
नेटुरप्सरसः शक्रभुजशाखासु स्रस्मिताः।
सलीलभ्रूलतोत्क्षेपमङ्गहारैः सचारिभिः।।१३२।।
वर्द्धमानलयैः काश्चित् काश्चित् ताण्डवलास्यकैः।
ननृतुः सुरनर्त्तक्यः चित्रैरभिनयैस्तदा।।१३३।।
काश्चिदैरावतीं पिण्डीमैन्द्रीं बद्ध्वामराङ्गनाः।
प्रानर्तिषुः प्रवेशैश्च निष्क्रमैश्च नियन्त्रितैः।।१३४।।
कल्पद्रुमस्य शाखासु कल्पवल्ल्य इवोद्गताः।
रेजिरे सुरराजस्य बाहुशाखासु तास्तदा।।१३५।।
स ताभिः सममारब्धरेचको व्यरुचत्तराम्।
चक्रान्दोल इव श्रीमान् चलन्मुकुटशेखरः।।१३६।।

नृत्य करते समय वह इन्द्र क्षण भर में एक रह जाता था, क्षण भर में अनेक हो जाता था, क्षण भर में सब जगह व्याप्त हो जाता था, क्षण भर में छोटा सा रह जाता था, क्षण भर में दूर पहुँच जाता था, क्षण भर में आकाश में दिखाई देता था, क्षण भर में पास ही दिखाई देता था, क्षण भर में फिर जमीन पर आ जाता था, इस प्रकार विक्रिया से उत्पन्न हुई अपनी सामर्थ्य को प्रकट करते हुए उस इन्द्र ने उस समय ऐसा नृत्य किया था मानो इन्द्रजाल का खेल ही किया हो।।१३०-१३१।।

इन्द्र की भुजारूपी शाखाओं पर मन्द-मन्द हँसती हुई अप्सराएँ लीलापूर्वक भौंहरूपी लताओं को चलाती हुई, शरीर हिलाती हुई और सुन्दरतापूर्वक पैर उठाती रखती हुई (थिरक-थिरककर) नृत्य कर रही थीं।।१३२।।

उस समय कितनी ही देवनर्तकियाँ वर्द्धमान लय के साथ, कितनी ही ताण्डव नृत्य के साथ और कितनी ही अनेक प्रकार के अभिनय दिखलाती हुई नृत्य कर रही थीं।।१३३।। कितनी देवियाँ बिजली का और कितनी ही इन्द्र का शरीर धारण कर नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रवेश तथा निष्क्रमण दिखलाती हुई नृत्य कर रही थीं।।१३४।।

उस समय इन्द्र की भुजारूपी शाखाओं पर नृत्य करती हुई वे देवियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो कल्पवृक्ष की शाखाओं पर फैली हुई कल्पलताएँ ही हों।।१३५।।

वह श्रीमान् इन्द्र नृत्य करते समय उन देवियों के साथ जब फिरकी लगाता था तब उसके मुकुट का सेहरा भी हिल जाता था और वह ऐसा शोभायमान होता था मानो कोई

सहस्राक्षसमुत्फुल्लविकसत्पङ्कजाकरे।
ताः पद्मिन्य इवाभूवन् स्मेरवक्त्राम्बुजश्रियः।।१३७।।
स्मितांशुभिर्विभिन्नानि तद्वक्त्राणि चकासिरे।
विकस्वराणि पद्मानि प्लुतानीवामृतप्लवैः।।१३८।।
कुलशैलायितानस्य भुजानध्यास्य काश्चन।
रेजिरे परिनृत्यन्त्या मूर्तिमत्य इव श्रियः।।१३९।।
नेटुरैरावतालान स्तम्भयष्टिसमायतान्।
अध्यासीना भुजानस्य वीरलक्ष्म्य इवापराः।।१४०।।
हारमुक्ताफलेष्वन्याः संक्रान्तप्रतियातनाः।
ननृतुर्बहुरूपिण्यो विद्या इव विडौजसः।।१४१।।
कराङ्गुलीषु शक्रस्य न्यस्यन्त्यः क्रमपल्लवान्।
सलीलमनटन् काश्चित् सूचीनाट्यमिवास्थिताः।।१४२।।

चक्र ही घूम रहा हो।।१३६।।

हजार आँखों को धारण करने वाला वह इन्द्र फूले हुए विकसित कमलों से सुशोभित तालाब के समान जान पड़ता था और मन्द-मन्द हँसते हुए मुखरूपी कमलों से शोभायमान, भुजाओं पर नृत्य करने वाली वे देवियाँ कमलिनियों के समान जान पड़ती थीं।।१३७।।

मन्द हास्य की किरणों से मिले हुए उन देवियों के मुख ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों अमृत के प्रवाह में डूबे हुए विकसित कमल ही हों।।१३८।।

कितनी ही देवियाँ कुलाचलों के समान शोभायमान उस इन्द्र की भुजाओं पर आरूढ़ होकर नृत्य कर रही थीं और ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो शरीरधारिणी लक्ष्मी हीहों।।१३९।।

ऐरावत हाथी के बाँधने के खम्भे के समान लम्बी इन्द्र की भुजाओं पर आरूढ़ होकर कितनी ही देवियाँ नृत्य कर रही थीं और ऐसी मालूम होती थीं मानो कोई अन्य वीर-लक्ष्मी ही हो।।१४०।।

नृत्य करते समय कितनी ही देवियों का प्रतिबिम्ब उन्हीं के हार के मोतियों पर पड़ता था जिससे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो इन्द्र की बहुरूपिणी विद्या ही नृत्य कर रही हो।।१४१।।

कितनी ही देवियाँ इन्द्र के हाथों की अँगुलियों पर अपने चरण-पल्लव रखती हुई लीलापूर्वक नृत्य कर रही थीं और ऐसी मालूम होती थीं मानो सूचीनाट्य (सूई की नोक पर किया जाने वाला नृत्य) ही कर रही हों।।१४२।।

भ्रेमुः कराङ्गुलीरन्यः सुपर्वास्त्रिदिवेशिनः।
वंशयष्टीरिवारुह्य तदग्रार्पितनामयः।।१४३।।
प्रतिबाह्वमरेन्द्रस्य सन्नटन्त्योऽमराङ्गनाः।
सयत्नं संचरन्ति स्म पञ्चयन्त्योऽक्षिसंकुलम्।।१४४।।
स्फुटन्निव कटाक्षेषु कपोलेषु स्फुरन्निव।
प्रसरन्निव पादेषु करेषु विलसन्निव।।१४५।।
विहसन्निव वक्त्रेषु नेत्रेषु विलसन्निव।
राज्यन्निवाङ्गरागेषु निमज्जन्निव नाभिषु।।१४६।।
चलन्निव कटीष्वासां मेखलासु स्खलन्निव।
तदा नाट्यरसोऽङ्गेषु ववृधे वर्द्धितोत्सवः।।१४७।।
प्रत्यङ्गममरेन्द्रस्य याश्चेष्टा नृत्यतोऽभवन्।
ता एव तेषु पात्रेषु संविभक्ता इवारुचन्।।१४८।।
रसास्त एव ते भावास्तेऽनुभावास्तदिङ्गितम्।
अनुप्रवेशितो नूनमात्मा तेष्वमरेशिना।।१४९।।

कितनी ही देवियाँ सुन्दर पर्वों सहित इन्द्र की अँगुलियों के अग्रभाग पर अपनी नाभि रखकर इस प्रकार फिरकी लगा रही थीं मानो किसी बाँस की लकड़ी पर चढ़कर उसके अग्रभाग पर नाभि रखकर मनोहर फिरकी लगा रही हों।।१४३।।

देवियाँ इन्द्र की प्रत्येक भुजा पर नृत्य करती हुई और अपने नेत्रों के कटाक्षों को फैलाती हुई बड़े यत्न से संचार कर रही थीं।।१४४।।

उस समय उत्सव को बढ़ाता हुआ वह नाट्यरस उन देवियों के शरीर में खूब ही बढ़ रहा था और ऐसा मालूम होता था मानो उनके कटाक्षों में प्रकट हो रहा हो, कपोलों में स्फुरायमान हो रहा हो, पाँवों में फैल रहा हो, हाथों में विलसित हो रहा हो, मुखों पर हंस रहा हो, नेत्रों में विकसित हो रहा हो, अंगराग में लाल वर्ण हो रहा हो, नाभि में निमग्न हो रहा हो, कटिप्रदेशों पर चल रहा हो और मेखलाओं पर स्खलित हो रहा हो।।१४५-१४७।।

नृत्य करते हुए इन्द्र के प्रत्येक अंग में जो चेष्टाएँ होती थीं वही चेष्टाएँ अन्य सभी पात्रों में हो रही थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्र ने अपनी चेष्टाएँ उन सबके लिए बाँट ही दी हों।।१४८।। उस समय इन्द्र के नृत्य में जो रस, भाव, अनुभाव और चेष्टाएँ थी वे ही रस, भाव, अनुभाव और अन्य सभी पात्रों में थीं जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्र ने अपनी आत्मा को ही उनमें प्रविष्ट करा दिया हो।।१४९।।

सोऽमात्स्वभुजदण्डेषु नर्त्तयन् सुरनर्त्तकीः।
तारवीः पुत्रिका यन्त्रफलकेष्विव यान्त्रिकः।।१५०।।
ऊर्ध्वमुच्चलयन् व्योम्नि नटन्तीर्दर्शयन् पुनः।
क्षणात्कुर्वन्नदृश्यास्ताः सोऽभून्माहेन्द्रजालकः।।१५१।।
इतश्चेतः स्वदोर्जाले गूढं संचारयन् नटीः।
सभवान् हस्तसंचारमिवासीदाचरन् हरिः।।१५२।।
नर्तयन्नेकतो यूनो युवतीरन्यतो हरिः।
भुजशाखासु सोऽनर्तीद् दर्शिताद्भुतविक्रियः।।१५३।।
नेटुस्तद्भुजरङ्गेषु ते च ताश्च परिक्रमैः।
सुत्रामा सूत्रधारोऽभून्नाट्यवेदविदांवरः।।१५४।।
दीप्तोद्धतरसप्रायं नृत्यं ताण्डवमेकतः।
सुकुमारप्रयोगाढ्यं ललितं लास्यमन्यतः।।१५५।।

अपने भुजदण्डों पर देवनर्तकियों को नृत्य कराता हुआ वह इन्द्र ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो किसी यन्त्र की पटियों पर लकड़ी की पुतलियों को नचाता हुआ कोई यान्त्रिक अर्थात् यन्त्र चलाने वाला ही हो।।१५०।।

वह इन्द्र नृत्य करती हुई उन देवियों को कभी ऊपर आकाश में चलाता था, कभी सामने नृत्य करती हुई दिखला देता था और कभी क्षण भर में उन्हें अदृश्य कर देता था, इन सब बातों से वह किसी इन्द्रजाल का खेल करने वाले के समान जान पड़ता था।।१५१।।

नृत्य करने वाली देवियों को अपनी भुजाओं के समूह पर गुप्तरूप से जहाँ-तहाँ घुमाता हुआ वह इन्द्र हाथ की सफाई दिखलाने वाले किसी बाजीगर के समान जान पड़ता था।।१५२।।

वह इन्द्र अपनी एक ओर की भुजाओं पर तरुण देवों को नृत्य करा रहा था और दूसरी ओर की भुजाओं पर तरुण देवियों को नृत्य करा रहा था तथा अद्भुत विक्रिया शक्ति दिखलाता हुआ अपनी भुजारूपी शाखाओं पर स्वयं भी नृत्य कर रहा था।।१५३।।

इन्द्र की भुजारूपी रंगभूमि में वे देव और देवांगनाएँ प्रदक्षिणा देती हुई नृत्य कर रही थीं इसलिए वह इन्द्र नाट्यशास्त्र के जानने वाले सूत्रधार के समान मालूम होता था।।१५४।।

उस समय एक ओर तो दीप्त और उद्धत रस से भरा हुआ ताण्डव नृत्य हो रहा था और दूसरी ओर सुकुमार प्रयोगों से भरा हुआ लास्य नृत्य हो रहा था।।१५५।।

विभिन्नरसमित्युच्चैर्दर्शयन् नाट्यमद्भुतम्।
सामाजिकजने शक्रः परां प्रीतिमजीजनत्।।१५६।।
गन्धर्वनायकारब्धविविधातोद्यसंविधिः।
आनन्दनृत्यमित्युच्चैर्मघवा निरवर्त्तयत्।।१५७।।
सकंसतालमुद्वेणु विततध्वनिसंकुलम्।
साप्सरः सरसं नृत्तं तदुद्यानमिवाद्युतत्।।१५८।।
नाभिराजः समं देव्या दृष्ट्वा तन्नाट्यमद्भुतम्।
विसिस्मिये परां श्लाघां प्रापच्च सुरसत्तमैः।।१५९।।
वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो वर्षिष्यति जगद्धितम्।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तमकार्षुर्वृषभाह्वयम्।।१६०।।
वृषो हि भगवान् धर्मस्तेन यद्भाति तीर्थकृत्।
ततोऽयं वृषभस्वामीत्याह्वा स्तैनं पुरन्दरः।।१६१।।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न रस वाले, उत्कृष्ट और आश्चर्यकारक नृत्य दिखलाते हुए इन्द्र ने सभा के लोगों में अतिशय प्रेम उत्पन्न किया था।।१५६।।

इस प्रकार जिसमें श्रेष्ठ गन्धर्वों के द्वारा अनेक प्रकार के बाजों का बजाना प्रारम्भ किया गया था ऐसे आनन्द नामक नृत्य को इन्द्र ने बड़ी सज-धज के साथ समाप्त किया।।१५७।।

उस समय वह नृत्य किसी उद्यान के समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार उद्यान काँस और ताल (ताड़) वृक्षों से सहित होता है उसी प्रकार वह नृत्य भी काँसे की बनी हुई झाँझों के ताल से सहित था, उद्यान जिस प्रकार ऊँचे-ऊँचे बाँसों के फैलते हुए शब्दों से व्याप्त रहता है उसी प्रकार वह नृत्य भी उत्कृष्ट बाँसुरियों के दूर तक फैलने वाले शब्दों से व्याप्त था, उद्यान जिस प्रकार अप्सर अर्थात् जल के सरोवरों से सहित होता है उसी प्रकार वह नृत्य भी अप्सर अर्थात् देवनर्तकियों से सहित था और उद्यान जिस प्रकार सरस अर्थात् जल से सहित होता है उसी प्रकार वह नृत्य भी सरस अर्थात् शृङ्गार आदि रसों से सहित था।।१५८।।

महाराज नाभिराज मरुदेवी के साथ-साथ वह आश्चर्यकारी नृत्य देखकर बहुत ही चकित हुए और इन्द्रों के द्वारा की हुई प्रशंसा को प्राप्त हुए।।१५९।।

ये भगवान् वृषभदेव जगत् भर में ज्येष्ठ हैं और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे इसलिए ही इन्द्रों ने उनका वृषभदेव नाम रखा था।।१६०।।

अथवा वृष श्रेष्ठ धर्म को कहते हैं और तीर्थंकर भगवान् उस वृष अर्थात् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान हो रहे हैं इसलिए ही इन्द्र ने उन्हें 'वृषभ-स्वामी' इस नाम से पुकारा था।।१६१।।

स्वर्गावतरणे दृष्टः स्वप्नेऽस्य वृषभो यतः।
जनन्या तदयं देवैराहूतो वृषभाख्यया।।१६२।।
पुरुहूतः पुरुं देवमाह्वयन्नाख्ययानया।
पुरुहूत इति ख्यातिं बभारान्वर्थतां गताम्।।१६३।।
ततोऽस्य सवयोरूप वेषान्सुरकुमारकान्।
निरूप्य परिचर्यायै दिवं जग्मुर्द्युनायकाः।।१६४।।
धात्र्यो नियोजिताश्चास्य देव्यः शक्रेण सादरम्।
मज्जने मण्डने स्तन्ये संस्कारे क्रीडनेऽपि च।।१६५।।
ततोऽसौ स्मितमातन्वन् संसर्पन्मणिभूमिषु।
पित्रोर्मुदं ततानाद्ये वयस्यद्भुतचेष्टितः।।१६६।।
जगदानन्दि नेत्राणामुत्सवप्रदमूर्जितम्।
कलोज्ज्वलं तदस्यासीत् शैशवं शशिनो यथा।।१६७।।

अथवा उनके गर्भावतरण के समय माता मरुदेवी ने एक वृषभ देखा था इसलिए ही देवों ने उनका 'वृषभ' नाम से आह्वान किया था।।१६२।।

इन्द्र ने सबसे पहले भगवान् वृषभनाथ को 'पुरुदेव' इस नाम से पुकारा था इसलिए इन्द्र अपने पुरुहूत (पुरु अर्थात् भगवान् वृषभदेव को आह्वान करने वाला) नाम को सार्थक ही धारण करता था।।१६३।।

तदनन्तर वे इन्द्र भगवान् की सेवा के लिए समान अवस्था, समान रूप और समान वेष वाले देवकुमारों को निश्चित कर अपने-अपने स्वर्ग को चले गए।।१६४।।

इन्द्र ने आदरसहित भगवान् को स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहनाने, दूध पिलाने, शरीर के संस्कार (तेल, कज्जल आदि लगाना) करने और क्रीडा कराने के कार्य में अनेक देवियों को धाय बनाकर नियुक्त किया था।।१६५।।

तदनन्तर आश्चर्यकारक चेष्टाओं को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव अपनी पहली अवस्था (शैशव अवस्था) में कभी मन्द-मन्द हँसते थे और कभी मणिमयी भूमि पर अच्छी तरह चलते थे, इस प्रकार वे माता-पिता का हर्ष बढ़ा रहे थे।।१६६।।

भगवान् की वह बाल्य अवस्था ठीक चन्द्रमा की बाल्य अवस्था के समान थी क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा की बाल्य अवस्था जगत् को आनन्द देने वाली होती है उसी प्रकार भगवान् की बाल्य अवस्था भी जगत् को आनन्द देने वाली थी, चन्द्रमा की बाल्य अवस्था जिस प्रकार नेत्रों को उत्कृष्ट आनन्द देने वाली होती है उसी प्रकार उनकी बाल्यावस्था नेत्रों को उत्कृष्ट आनन्द देने वाली थी और चन्द्रमा की बाल्यावस्था जिस

मुग्धस्मितमभूदस्य मुखेन्दौ चन्द्रिकामलम्।
तेन पित्रोर्मनस्तोषजलधिर्ववृधेतराम्।।१६८।।
पीठबन्धः सरस्वत्या लक्ष्म्या हसितविभ्रमः।
कीर्तिवल्ल्या विकासोऽस्य मुखे मुग्धस्मयोऽभवत्।।१६९।।
श्रीमन्मुखाम्बुजेऽस्यासीत् क्रमान्मन्मनभारती।
सरस्वतीव तद्वाल्यमनुकर्त्तुं तदाश्रिता।।१७०।।
स्खलत्पदं शनैरिद्रनीलभूमिषु संचरन्।
स रेजे वसुधां रक्तैरब्जैरुपहरन्निव।।१७१।।
रत्नपांसुषु चिक्रीड स समं सुरदारकैः।
पित्रोर्मनसि संतोषमातन्वल्ललिताकृतिः।।१७२।।
प्रजानां दधदानन्दं गुणैराह्लादिभिर्निजैः।
कीर्तिज्योत्स्नापरीताङ्गः स बभौ बालचन्द्रमाः।।१७३।।

प्रकार कला मात्र से उज्ज्वल होती है उसी प्रकार उनकी बाल्यावस्था भी अनेक कलाओं-विद्याओं से उज्ज्वल थी।।१६७।।

भगवान् के मुखरूपी चन्द्रमा पर मन्द हास्यरूपी निर्मल चाँदनी प्रकट रहती थी और उससे माता-पिता का सन्तोषरूपी समुद्र अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता रहता था।।१६८।।

उस समय भगवान् के मुख पर जो मनोहर मन्द हास्य प्रकट हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानो सरस्वती का गीतबन्ध अर्थात् संगीत का प्रथम राग ही हो अथवा लक्ष्मी के हास्य की शोभा ही हो अथवा कीर्तिरूपी लता का विकास ही हो।।१६९।।

भगवान् के शोभायमान मुखकमल में क्रम-क्रम से अस्पष्ट वाणी प्रकट हुई जो कि ऐसी मालूम होती थी मानो भगवान् की बाल्य अवस्था का अनुकरण करने के लिए सरस्वती देवी ही स्वयं आयी हों।।१७०।।

इन्द्रनीलमणियों की भूमि पर धीरे-धीरे गिरते पड़ते पैरों से चलते हुए बालक भगवान् ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पृथिवी को लाल कमलों का उपहार ही दे रहे हों।।१७१।।

सुन्दर आकार को धारण करने वाले वे भगवान् माता-पिता के मन में सन्तोष को बढ़ाते हुए देव बालकों के साथ-साथ रत्नों की धूलि में क्रीडा करते थे।।१७२।।

वे बाल भगवान् चन्द्रमा के समान शोभायमान होते थे क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा अपने आल्हादकारी गुणों से प्रजा को आनन्द पहुँचाता है उसी प्रकार वे भी अपने आल्हादकारी गुणों से प्रजा को आनन्द पहुँचा रहे थे और चन्द्रमा का शरीर जिस प्रकार चाँदनी से व्याप्त रहता है उसी प्रकार उनका शरीर भी कीर्तिरूपी चाँदनी से व्याप्त था।।१७३।।

बालावस्थामतीतस्य तस्याभूद् रुचिरं वपुः।
कौमारं देवनाथानामर्चितस्य महौजसः।।१७४।।
वपुषो वृद्धिमन्वस्य गुणा ववृधिरे विभोः।
शशाङ्कमण्डलस्येव कान्तिदीप्त्यादयोऽन्वहम्।।१७५।।
वपुः कान्तं प्रिया वाणी मधुरं तस्य वीक्षितम्।
जगतः प्रीतिमातेनुः सस्मितं च प्रजल्पितम्।।१७६।।
कलाश्च सकलास्तस्य वृद्धौ वृद्धिमुपाययुः।
इन्दोरिव जगच्चेतो नन्दनस्य जगत्पतेः।।१७७।।
मतिश्रुते सहोत्पन्ने ज्ञानं चावधिसंज्ञकम्।
ततोऽबोधि स निश्शेषा विद्या लोकस्थितीरपि।।१७८।।
विश्वविद्येश्वरस्यास्य विद्याः परिणताः स्वयम्।
ननु जन्मान्तराभ्यासः स्मृतिं पुष्णाति पुष्कलाम्।।१७९।।

जब भगवान् की बाल्यावस्था व्यतीत हुई तब इन्द्रों के द्वारा पूज्य और महाप्रतापी भगवान् का कौमार अवस्था का शरीर बहुत ही सुन्दर हो गया।।१७४।।

जिस प्रकार चन्द्रमण्डल की वृद्धि के साथ-साथ ही उसके कान्ति, दीप्ति आदि अनेक गुण प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार भगवान् के शरीर की वृद्धि के साथ-साथ ही अनेक गुण प्रतिदिन बढ़ते जाते थे।।१७५।।

उस समय उनका मनोहर शरीर, प्यारी बोली, मनोहर अवलोकन और मुसकाते हुए बातचीत करना यह सब संसार की प्रीति को विस्तृत कर रहे थे।।१७६।।

जिस प्रकार जगत् के मन को हर्षित करने वाले चन्द्रमा की वृद्धि होने पर उसकी समस्त कलाएँ बढ़ने लगती हैं उसी प्रकार समस्त जीवों के हृदय को आनन्द देने वाले जगत्पति—भगवान् के शरीर की वृद्धि होने पर उनकी समस्त कलाएँ बढ़ने लगी थीं।।१७७।।

मति, श्रुत और अवधि ये तीनों ही ज्ञान भगवान् के साथ-साथ ही उत्पन्न हुए थे इसलिए उन्होंने समस्त विद्याओं और लोक की स्थिति को अच्छी तरह जान लिया था।।१७८।।

वे भगवान् समस्त विद्याओं के ईश्वर थे इसलिए उन्हें समस्त विद्याएँ अपने आप ही प्राप्त हो गयी थीं सो ठीक ही है क्योंकि जन्मान्तर का अभ्यास स्मरण शक्ति को अत्यन्त पुष्ट रखता है।।१७९।।

कलासु कौशलं श्लाघ्यं विश्वविद्यासु पाटवम्।
क्रियासु कर्मठत्वं च स भेजे शिक्षया विना।।१८०।।
वाङ्मयं सकलं तस्य प्रत्यक्षं वाक्प्रभोरभूत्।
येन विश्वस्य लोकस्य वाचस्पत्यादभूद् गुरुः।।१८१।।
पुराणः स कविर्वाग्मी गमकश्चेति नोच्यते।
कोष्टबुद्ध्यादयो बोधा येन तस्य निसर्गजाः।।१८२।।
क्षायिकं दर्शनं तस्य चेतोऽमलमपाहरत्।
वाग्मलं च निसर्गेण प्रसृतास्य सरस्वती।।१८३।।
श्रुतं निसर्गतोऽस्यासीत् प्रसूतः प्रशमः श्रुतात्।
ततो जगद्धितास्यासीत् चेष्टा सापालयत् प्रजाः।।१८४।।
यथा यथास्य वर्द्धन्ते गुणांशा वपुषा समम्।
तथा तथास्य जनता बन्धुता चागमन्मुदम् ।।१८५।।

वे भगवान् शिक्षा के बिना ही समस्त कलाओं में प्रशंसनीय कुशलता को, समस्त विद्याओं में प्रशंसनीय चतुराई को और समस्त क्रियाओं में प्रशंसनीय कर्मठता (कार्य करने की सामर्थ्य) को प्राप्त हो गए थे।।१८०।।

वे भगवान् सरस्वती के एकमात्र स्वामी थे इसलिए उन्हें समस्त वाङ्मय (शास्त्र) प्रत्यक्ष हो गए थे और इसलिए वे समस्त लोक के गुरु हो गए थे।।१८१।।

वे भगवान् पुराण थे अर्थात् प्राचीन इतिहास के जानकार थे, कवि थे, उत्तम वक्ता थे, गमक (टीका आदि के द्वारा पदार्थ को स्पष्ट करने वाले) थे और सबको प्रिय थे क्योंकि कोष्ठबुद्धि आदि अनेक विद्याएँ उन्हें स्वभाव से ही प्राप्त हो गयी थीं।।१८२।।

उनके क्षायिक सम्यग्दर्शन ने उनके चित्त के समस्त मल को दूर कर दिया था और स्वभाव से विस्तार को प्राप्त हुई सरस्वती ने उनके वचन सम्बन्धी समस्त दोषों का अपहरण कर लिया था।।१८३।।

उन भगवान् के स्वभाव से ही शास्त्रज्ञान था, उस शास्त्रज्ञान से उनके परिणाम बहुत ही शान्त रहते थे। परिणामों के शान्त रहने से उनकी चेष्टाएँ जगत् का हित करने वाली होती थीं और उन जगत् हितकारी चेष्टाओं से वे प्रजा का पालन करते थे।।१८४।।

ज्यों-ज्यों शरीर के साथ-साथ उनके गुण बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों समस्त जनसमूह और उनके परिवार के लोग हर्ष को प्राप्त होते जाते थे।।१८५।।

स पित्रोः परमानन्दं बन्धुतायाश्च निर्वृतिम्।
जगज्जनस्य संप्रीतिं वर्द्धयन् समवर्द्धत।।१८६।।
परमायुरथास्याभूत् चरमं बिभ्रतो वपुः।
संपूर्णा पूर्वलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा।।१८७।।
दीर्घदर्शी सुदीर्घायुर्दीर्घबाहुश्च दीर्घदृक्।
स दीर्घसूत्रो लोकानामभजत् सूत्रधारताम्।।१८८।।
कदाचिल्लिपिसंख्यान गन्धर्वादिकलागमम्।
स्वभ्यस्तपूर्वमभ्यस्यन् स्वयमभ्यासयत् परान्।।१८९।।
छन्दोऽवचित्यलङ्कारप्रस्तारादिविवेचनैः।
कदाचिद् भावयन् गोष्ठीश्चित्राद्यैश्च कलागमैः।।१९०।।
कदाचित् पद गोष्ठीभिः काव्यगोष्ठीभिरन्यदा।
वावदूकैः समं कैश्चित् जल्पगोष्ठीभिरेकदा।।१९१।।
कर्हिचिद् गीतगोष्ठीभिर्नृत्त गोष्ठीभिरेकदा।
कदाचिद् वाद्यगोष्ठीभिर्वीणागोष्ठीभिरन्यदा।।१९२।।

इस प्रकार वे भगवान् माता-पिता के परम आनन्द को, बन्धुओं के सुख को और जगत् के समस्त जीवों की परम प्रीति को बढ़ाते हुए वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।।१८६।।

चरम शरीर को धारण करने वाले भगवान् की सम्पूर्ण आयु चौरासी लाख पूर्व की थी।।१८७।।

वे भगवान् दीर्घदर्शी थे, दीर्घ आयु के धारक थे, दीर्घ भुजाओं से युक्त थे, दीर्घ नेत्र धारण करने वाले थे और दीर्घ सूत्र अर्थात् दृढ़ विचार के साथ कार्य करने वाले थे इसलिए तीनों ही लोकों की सूत्रधारता—गुरुत्व को प्राप्त हुए थे।।१८८।।

भगवान् वृषभदेव कभी तो, जिनका पूर्वभव में अच्छी तरह अभ्यास किया है ऐसे लिपि विद्या, गणित विद्या तथा संगीत आदि कलाशास्त्रों का स्वयं अभ्यास करते थे और कभी दूसरों को कराते थे।।१८९।।

कभी छन्दशास्त्र, कभी अलंकार शास्त्र, कभी प्रस्तार नष्ट उद्दिष्ट संख्या आदि का विवेचन और कभी चित्र खींचना आदि कला शास्त्रों का मनन करते थे।।१९०।।

कभी वैय्याकरणों के साथ व्याकरण सम्बन्धी चर्चा करते थे, कभी कवियों के साथ काव्य विषय की चर्चा करते थे और कभी अधिक बोलने वाले वादियों के साथ वाद करते थे।।१९१।।

कभी गीतगोष्ठी, कभी नृत्यगोष्ठी, कभी वादित्रगोष्ठी और कभी वीणागोष्ठी के द्वारा समय व्यतीत करते थे।।१९२।।

कर्हिचिद् बर्हिरूपेण नटतः सुरचेटकान्।
नटयन् करतालेन लयमार्गानुयायिना ।।१९३।।
कांश्चिच्च शुकरूपेण समासादितविक्रियान्।
संपाठं पाठयंछ्लोकानम्लिष्ट मधुराक्षरम् ।।१९४।।
हंसविक्रियया कांश्चित् कूजतो मन्द्रगद्गदम्।
बिसभङ्गैः स्वहस्तेन दत्तैः संभावयन्मुहुः।।१९५।।
गजविक्रियया कांश्चिद् दधतः कालभीं दशाम्।
सान्त्वयन्मुहुरानार्थ्य (राना थ्य) करमा क्रीडयन्मुदा।।१९६।।
मणिकुट्टिमसंक्रान्तैः स्वैरेव प्रतिबिम्बकैः।
कृकवाकूयितान् कांश्चिद् योद्धुकामान् परमृशन् ।।१९७।।
मल्लविक्रियया कांश्चिद् युयुत्सूननभिद्रहः।
प्रोत्साहयन्कृतास्फोटवल्गानानभिनृत्यतः।।१९८।।
क्रौञ्चसारसरूपेण तारक्रेङ्कारकारिणाम्।
श्रृण्वन्ननुगतं शब्दं केषांचित् श्रुतिपेशलम् ।।१९९।।

कभी मयूरों का रूप धरकर नृत्य करते हुए देवकिंकरों को लय के अनुसार हाथ की ताल देकर नृत्य कराते थे।।१९३।।

कभी विक्रिया शक्ति से तोते का रूप धारण करने वाले देवकुमारों को स्पष्ट और मधुर अक्षरों से श्लोक पढ़ाते थे।।१९४।।

कभी हंस की विक्रिया कर धीरे-धीरे गद्गद बोली से शब्द करते हुए हंसरूपधारी देवों को अपने हाथ से मृणाल के टुकड़े देकर सम्मानित करते थे।।१९५।।

कभी विक्रिया से हाथियों के बच्चों का रूप धारण करने वाले देवों को सान्त्वना देकर या सूँड़ में प्रहार कर उनके साथ आनन्द से क्रीडा करते थे।।१९६।।

कभी मुर्गों का रूप धारण कर रत्नमयी जमीन में पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्बों के साथ ही युद्ध करने की इच्छा करने वाले देवों को देखते थे या उन पर हाथ फेरते थे।।१९७।।

कभी विक्रिया शक्ति से मल्ल का रूप धारण कर वैर के बिना ही मात्र क्रीडा करने के लिए युद्ध करने की इच्छा करने वाले गम्भीर गर्जना करते हुए और इधर-उधर नृत्य सा करते हुए देवों को प्रोत्साहित करते थे।।१९८।।

कभी क्रौञ्च और सारस पक्षियों का रूप धारण कर उच्च स्वर से क्रेंकार शब्द करते हुए देवों के निरन्तर होने वाले कर्णप्रिय शब्द सुनते थे।।१९९।।

स्रग्विणः शुचिलिप्ताङ्गान् समेतान् सुरदारकान्।
दाण्डां क्रीडां समायोज्य नर्त्तयंश्च कदाचन।।२००।।
अनारतं च कुन्देन्दुमन्दाकिन्यप्छटामलम्।
सुरवन्दिभिरुद्गीतं स्वं समाकर्णयन् यशः।।२०१।।
अतन्द्रितं च देवीभिः न्यस्यमानं गृहाङ्गणे।
रत्नचूर्णैर्बलिं चित्रं सानन्दमवलोकयन् ।।२०२।।
संभावयन् कदाचिच्च प्रकृती द्रष्टुमागताः।
वीक्षितैर्मधुरैः स्निग्धैः स्मितैः सादरभाषितैः।।२०३।।
कदाचिद् दीर्घिकाम्भस्सु समं सुरकुमारकैः।
जलक्रीडाविनोदेन रममाणः ससंमदम्।।२०४।।
सारवं जलमासाद्य सारवं हंसकूजितैः।
तारवैर्यन्त्रकैः क्रीडन् जलास्फालकृतारवैः।।२०५।।
जलकेलिविधावेनं भक्त्या मेघकुमारकाः।
भेजुर्धारागृहीभूय स्फुरद्धाराः समन्ततः।।२०६।।

कभी माला पहने हुए, शरीर में चन्दन लगाए हुए और इकट्ठे होकर आए हुए देव बालकों को दण्ड क्रीडा (पड़गर का खेल) में लगाकर नचाते थे।।२००।।

कभी स्तुति पढ़ने वाले देवों के द्वारा निरन्तर गाये गये और कुन्द, चन्द्रमा तथा गङ्गा नदी के जल के छींटों के समान निर्मल अपने यश को सुनते थे।।२०१।।

कभी घर के आँगन में आलस्यरहित देवियों के द्वारा बनाई हुई रत्नचूर्ण की चित्रावलि को आनन्द के साथ देखते थे।।२०२।।

कभी अपने दर्शन करने के लिए आयी हुई प्रजा का, मधुर और स्नेहयुक्त अवलोकन के द्वारा तथा मन्द हास्य और आदरसहित संभाषण के द्वारा सत्कार करते थे।।२०३।।

कभी बावड़ियों के जल में देवकुमारों के साथ-साथ आनन्दसहित जलक्रीडा का विनोद करते हुए क्रीडा करते थे।।२०४।।

कभी हंसों के शब्दों से शब्दायमान सरयू नदी का जल प्राप्त कर उसमें पानी के आस्फालन से शब्द करने वाले लकड़ी के बने हुए यन्त्रों से जलक्रीडा करते थे।।२०५।।

जलक्रीडा के समय मेघकुमार जाति के देव भक्ति से धारागृह (फव्वारा) का रूप धारण कर चारों ओर से जल की धारा छोड़ते हुए भगवान् की सेवा करते थे।।२०६।।

कदाचिन्नन्दनस्पर्द्धितरुशोभाञ्चिते वने।
वनक्रीडां समातन्वन् वयस्यै रन्वितः सुरैः।।२०७।।
वनक्रीडाविनोदेऽस्य विरजीकृतभूतलाः।
मन्दं दुधुवुरुद्यानपादपान् पवनामराः।।२०८।।
इति कालोचिताः क्रीडा विनोदांश्च स निर्विशन्।
आसांचक्रे सुखं देवः समं देवकुमारकैः।।२०९।।

मालिनी

इवि भुवनपतीनामर्चनीयोऽभिगम्यः
सकलगुणमणीनामाकरः पुण्यमूर्त्तिः।
सममरकुमारैर्निर्विशन् दिव्यभोगानरमत
चिरमस्मिन् पुण्यगेहे स देवः।।२१०।।
प्रतिदिनममरेन्द्रोपाहृतान् भोगसारान्
सुरभिकुसुममालाचित्रभूषाम्बरादीन्।
ललितसुरकुमारैरिङ्गितज्ञैर्वयस्यैः
सममुपहितरागः सोऽन्वभूत् पुण्यपाकान्।।२११।।

कभी नन्दनवन के साथ स्पर्धा करने वाले वृक्षों की शोभा से सुशोभित नन्दन वन में मित्ररूप हुए देवों के साथ-साथ वनक्रीडा करते थे।।२०७।।

वनक्रीडा के विनोद के समय पवनकुमार जाति के देव पृथ्वी को धूलिरहित करते थे और उद्यान के वृक्षों को धीरे-धीरे हिलाते थे।।२०८।।

इस प्रकार देवकुमारों के साथ अपने-अपने समय के योग्य क्रीडा और विनोद करते हुए भगवान् वृषभदेव सुखपूर्वक रहते थे।।२०९।।

इस प्रकार जो तीन लोक के अधिपति—इन्द्रादि देवों के द्वारा पूज्य हैं, आश्रय लेने योग्य हैं, सम्पूर्ण गुणरूपी मणियों की खान हैं और पवित्र शरीर के धारक हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव महाराज नाभिराज के पवित्र घर में दिव्य सुख भोगते हुए देवकुमारों के साथ-साथ चिरकाल तक क्रीडा करते रहे।।२१०।।

वे भगवान् पुण्यकर्म के उदय से प्रतिदिन इन्द्र के द्वारा भेजे हुए सुगन्धित पुष्पों की माला, अनेक प्रकार के वस्त्र तथा आभूषण आदि श्रेष्ठ भोगों का अपना अभिप्राय जानने वाले सुन्दर देवकुमारों के साथ प्रसन्न होकर अनुभव करते थे।।२११।।

शर्दूलविक्रीडितम्

स श्रीमन्नृसुरासुरार्चितपदो बालेऽप्यबालक्रियो
लीलाहास विलासवेषचतुरामाबिभ्रदुच्चैस्तनुम् ।
तन्वानः प्रमदं जगज्जनमनः प्रह्लादिभिर्वाक्करै
बालेन्दुर्ववृधे शनैरमलिनः कीर्त्युज्ज्वलच्चन्द्रिकः।।२१२।।
तारालीतरलां दधत् समुचितां वक्षस्स्थलासंगिनीं
लक्ष्म्यान्दोलनवल्लरीमिव ततां तां हारयष्टिं पृथुम् ।
ज्योत्स्नामन्यमथांशुकं परिदधत्काञ्चीकलापाञ्चितं
रेजेऽसौ सुरदारकैरडुसमैः क्रीडज्जिनेन्दुर्भृशम् ।।

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणश्रीमहापुराणसंग्रहे
भगवज्जातकर्मोत्सववर्णनं नाम चतुर्दशं पर्व।।१४।।

जिन के चरणकमल मनुष्य, सुर और असुरों के द्वारा पूजित हैं, जो बाल्य अवस्था में भी वृद्धों के सामन कार्य करने वाले हैं, जो लीला, आहार, विलास और वेष से चतुर, उत्कृष्ट तथा ऊँचा शरीर धारण करते हैं, जो जगत् के जीवों के मन को प्रसन्न करने वाले अपने वचनरूपी किरणों के द्वारा उत्तम आनन्द को विस्तृत करते हैं, निर्मल हैं और कीर्तिरूपी फैलती हुई चाँदनी से शोभायमान हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव बाल चन्द्रमा के समान धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।।२१२।।

ताराओं की पंक्ति के समान चंचल लक्ष्मी के झूले की लता के समान, समुचित विस्तृत और वक्षःस्थल पर पड़े हुए बड़े भारी हार को धारण किये हुए तथा करधनी से सुशोभित चाँदनीतुल्य वस्त्रों को पहने हुए वे जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा नक्षत्रों के समान देवकुमारों के साथ क्रीडा करते हुए अतिशय सुशोभित होते थे।।२१३।।

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसंग्रह में भगवज्जातकर्मोत्सववर्णन नाम का चौदहवाँ पर्व समाप्त हुआ।।१४।।

सुमेरु वंदना

यह मेरु सुदर्शन त्रिभुवन में, सबसे ऊँचा कहलाता है।
योजन इक लाख कहा ऊँचा, इक सहस नींव में जाता है।।
चालिस योजन चूलिका कही, वैडूर्यमणीमय प्यारी है।
यह भू पर चौड़ा दश हजार, इसकी छवि जग से न्यारी है।।१।।

पृथ्वी पर भद्रशाल वन है, नंदनवन पांच शतक ऊपर।
इससे साढ़े बासठ हजार, योजन पर सौमनसं सुन्दर।।
इससे ऊपर छत्तिस हजार, योजन जाकर पांडुकवन है।
चारों वन में शुभ चार-चार, जिनमंदिर अतिशय सुन्दर हैं।।२।।

इकसठ हजार योजन तक गिरि, बहु वर्णमयी बहु रत्नमयी।
ऊपर में पांडुकवन तक है, अतिसुंदर श्रेष्ठ सुवर्णमयी।।
पांडुकवन की विदिशाओं में, वर पांडुक आदिक चार शिला।
तीर्थंकर के जन्माभिषेक, से पावन पूज्य हुई विमला।।३।।

ईशान दिशा में शिला कही, जो पांडुक नामा कनकमयी।
हो भरत क्षेत्र के जिनवर का, इस पर अभिषेक अनूपम ही।।
आग्नेय दिशा में शिला कही, जो पांडुकम्बला रजतमयी।
पश्चिम विदेह के जिनवर का, होता अभिषेक सुपुण्यमयी।।४।।

नैऋत दिश में रक्ता नामा, है शिला तपाये स्वर्णसमा।
ऐरावत के तीर्थंकर का, उस पर अभिषेक कहा सुषमा।।
वायव्य दिशा में लाल शिला, जो रक्तकम्बला नाम धरे।
अभिषेक वहाँ पूरब विदेह, तीर्थंकर का इंद्रादि करें।।५।।

ये अर्ध चंद्र आकार शिला, सौ योजन लम्बी मानी है।
योजन पचास चौड़ी ऊँची, है आठ कहे जिनवाणी है।।
इन मध्य श्रेष्ठ सिंहासन हैं, जो तीर्थंकर के लिए कहे।
द्वय पार्श्व भाग दो भद्रासन, सौधर्म ईशान के लिये रहे।।६।।

जब-जब तीर्थेश जन्मते हैं, इंद्रों के आसन कंपते हैं।
इंद्रों के मुकुट स्वयं झुकते, सब वाद्य स्वयं बज उठते हैं।।

ऐरावत हाथी पर चढ़कर, सौधर्म इन्द्र आ जाता है।
उस समय असंख्यों देवों का, समुदाय उमड़कर आता है।।७।।

इन्द्राणी जिनशिशु को लाकर, सौधर्म इन्द्र को देती है।
तत्क्षण ही स्त्रीलिंग छेद, निज इक ही भव कर लेती है।
प्रभु को सुमेरु पर ले जाकर, क्षीरोदधि से जल भर लाते।
इक सहस आठ कलशों द्वारा प्रभु न्हवन करें अति हर्षाते।।८।।

मेरू के सोलह जिनमंदिर, भक्ती से उन दर्शन कीजे।
जिनप्रतिमाओं का वंदन कर, पूजन कर पाप शमन कीजे।।
जिन वचनों में श्रद्धा करके, निज सम्यक् ''ज्ञानमती'' कीजे।
रत्नत्रय निधि को पा करके, क्रम से जिनगुण संपति लीजे।।९।।

भजन

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

तर्ज–फूलों सा चेहरा तेरा.....

इस युग की माँ शारदे, तू धर्म की प्राण है।
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।टेक.।।

महावीर प्रभु के शासन में अब तक,
कोई भी नारी न ऐसी हुई।
साहित्य लेखन करने की शक्ति,
तुझमें न जाने कैसे हुई।।

शास्त्र पुराणों में, भक्ति विधानों में, तेरा प्रथम नाम है विश्व में-2
कलियुग की माँ भारती, पूनो का तू चांद है,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग...।।1।।

तीर्थंकरों की जन्मभूमि का,
उत्थान माता तुमने किया।
हस्तिनापुरी में जंबूद्वीप को,
साकार माता तुमने किया।।

तीर्थ अयोध्या की, कीर्ति प्रसारित की, मस्तकाभिषेक आदिनाथ का हुआ-2
तू जग की वागीश्वरी, धरती का सम्मान है,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग...।।2।।

गणिनी शिरोमणि तेरी तपस्या,
का लाभ इस वसुधा को मिला।
चारित्र चक्री गुरु के सदृश ही,
''चंदना'' इक पुष्प जग में खिला।

पुष्प महकता है, चाँद चमकता है, ज्ञानमती माता के रूप में-2
युग युग तू जीती रहे, हम सबके अरमान हैं,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग...।।3।।